

सामाजिक कुरीतियाँ

[टाल्ट्राय की Social Evils and their Remedy का अनुवाद]

अनुवादक

श्री माधवप्रसाद मिश्र

१९४७

स्वासाहित्यमहल,
नई दिल्ली

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली ।

तीसरी बार १९४७

मूल्य

सत्तर ~~दो~~ रुपये

मुद्रक—

अमरचन्द्र

राजहसप्रेस,

दिल्ली, १९४७ ।

प्रकाशकीय

'सामाजिक कुरीतियाँ' का यह संस्करण सन् १९३२ के बाद १९४७ में—१५ वर्षों बाद प्रकाशित हो रहा है, क्योंकि सन् १९३२ में अजमेर मेरवाड़ा की सरकार ने—राजद्रोहात्मक करार देकर इसे जन्त कर लिया था। अन्तरिम सरकार के स्थापित होने के बाद दिसंबर १९४६ में अजमेर मेरवाड़ा की सरकार ने यह जन्ती, हमारे लिखने पर, उठा ली। पंद्रह वर्षों के बाद भी, इस पुस्तक का नया संस्करण, आज के समय में पाठकों को दिलचस्प और समझनीय मालूम होगा, और आशा है पाठक उत्साह से इसे अपनावेंगे।

—संक्षी

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मन्दल,
नई दिल्ली ।

तीसरी बार : १९४७

मूल्य

सत्रादी रूपये

मुद्रक—

अमरचन्द्र

राजहसमेस,

दिल्ली, १८-४७ ।

प्रकाशकीय

'सामाजिक कुरीतियाँ' का यह संस्करण सन् १९३२ के बाद १९४७ में—१५ वर्ष बाद प्रकाशित हो रहा है क्योंकि सन् १९३२ में अजमेर-मेरवाड़ा की सरकार ने—राजद्रोहात्मक करार देकर इसे जब्त कर लिया था। अन्तरिम सरकार के स्थापित होने के बाद दिसंबर १९४९ में अजमेर-मेरवाड़ा की सरकार ने वह जब्त की, हमारे लिखने पर, ठठा ली। पंद्रह वर्ष के बाद भी, इस पुस्तक का नया संस्करण, आज के समय में पाठकों को दिव्यरूप और समग्रदृष्टीय मालूम होगा, और आशा है पाठक उत्साह से इस अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

कुछ वय हुए, पैरिस की एक प्रदर्शनी में इमान स्टिका नामक एक चित्रकार ने "बहिष्कृत टॉल्स्टॉय" नामक एक चित्र रक्खा था। उसमें यह बताया गया था कि प्रसु इमा टॉल्स्टॉय को अपना बाहों में मभाव हुए हैं और उनक मस्तरु को चुम रहे हैं।

यदि महात्मा टॉल्स्टॉय के जीवन चरित्र पर मैकडों पृष्ठों की एक पुस्तक लिखा जाय वा वह भी उनक जीवनादेश्य और काय क विषय में हमें इतनी जानकारी नहीं दे सकता और कम-कम वह श्रद्धा तो कमी हमार दिल में उत्पन्न नहीं कर सकती, जो इस चित्र की कल्पना-मात्र से हो जाती है। टॉल्स्टॉय, उनका शुद्ध हृदय, उनकी काय-शालता और उनक प्रिय में इमाइ समाज तथा इसा (त्रियका इमाइ लाग परमाणु का पुत्र मानत है) क भार आदि सब एक छोट से चित्र में चित्रकार न भिन्ना दिये। वह पुरप कितना महान हागा, नित स्वय इमा अपन हृदय से लगा कर उसक मस्तरु का चुमत हों, और वे धमाधिकारी भी कितन पतित होंग जिन्होंने पुरप का अपने समाज से बहिष्कृत कर दिया ?

धाम्तर में टॉल्स्टॉय का बुद्धि इतनी उल्लसपरी था, उनका हृदय इतना स्वच्छ था, और उनका वाया में ऐसी अददस्त शक्ति थी कि वे समाम सामाजिक बुराइयों का उद को ग्वाद कर लागों का मुउ-म-मुउ शब्दों में बता दत थ। वे इस बात का परवा नहीं करत थ कि बुराइयाँ किनसे मम्ब-ध रयता है। वह राजा हा था रक, पारी हा या पार,

सेठ-साहूकार हो या दरिद्री और स्त्री हा या पुरुष; वे स्पष्ट स स्पष्ट शब्दों में उमे खोल कर रख देते। उनके प्रथों और सुली चिट्ठियों को पढ़कर हांगों के दिल दहल जाने थे, पापियों के अन्त करण में भय का सचार हो जाता था, पेटार्थों धमाधकारियों का धम-मान और इल्मी चौड़ी बातें कापूर हो जातीं और राजाओं क मिहाम्न टावाडाब हो जाते थे। वहा छल कपट और फिकनी-बुपही बातें नहीं थीं, बल्कि प्रेम और स्वार्थ-स्याग का निमल उपदेश था।

टॉल्स्टॉय एक पक्के सुधारक थे। उनका सपूर्ण जीवन (1८२८-१९१० ई०) पेशेआराम और भोग विलास का नहीं, एक सच्चे माधक का नागृत जीवन था। वे प्रतिक्षण मोचते और प्रयोग करत रहते थे। किसी बात के अन्दे और नीति युक्त होन में उनके दिल में सदेह उत्पन्न होते ही वे उसकी तह तक जाते। राठ में नींद उनक लिए हराम हो जाती। ग्रन्थ और मन्त्रियों को टटोलत और चिठा करते करते पागल हो जाते थे। अपन जीवन की असबद्धता और निरुदेश्यता पर अनुताप करते-करते शरमहस्या ठरू के लिए वे उतारू हो जाते; पर किसी बात को अथूरी नहीं छोड़त। अतगामा और दैनिक जोरन में अमम्बद्धता का ये कमी बरदारत नहीं कर सकत थे।

और इसका परिणाम क्या हुआ ? सत्तावाद, पू जीवाद, सेनावाद धार्मिक संगठन और स्त्री पुरुषों क पारस्परिक सम्बन्ध पर उहोंने अपने अद्भुत विचार प्रकाशित करके मार यूरोप में एक स्पृहणाय क्रान्ति कर बी। इन विषयों पर लिखी हजारों पुस्तकों का ब्यथ और मूर्खतापुण्य साधित कर दिया और मानव-जीवन के सरल अनातन नियमों का पुन समाज क सामन रखकर उसे धानवाले खतरों स सचेत कर दिया।

“धार्म्यात्मिक साम्यवाद” उनके जीवन, शिक्षाओं और उपदेशों का निकर है। उनका उपदेश यह नहीं था कि पू जीपतियों और राजाओं को लूटकर उनकी सम्पत्ति गरीबों में बाट दो यह सो निमदह थे चाहते थे कि कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति न रखे। मारी सम्पत्ति राठ की हो।

परन्तु उनका डग जुदा था। रूस का वर्तमान साम्यवाद टॉल्स्टॉय का धार्मिक साम्यवाद नहीं, लेनिन का राजनैतिक साम्यवाद है। टॉल्स्टॉय का साम्यवाद रामराज्य होगा। जिसमें लोग दूसरे की सम्पत्ति को छीन कर अपने को उसके समान बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, बल्कि दूसरे की सुविधा और सुख का खयाल कर शुरू में ही सम्पत्ति का त्याग करेंगे और सम्मान भाग स रहने की कोशिश करेंगे। अर्थात् हिंसा नहीं, अनादृ भाग-युक्त त्याग हमारे सामाजिक-जीवन का आचार सूत्र हो।

टॉल्स्टॉय की रचनाओं को पढ़ते हुए वही उल्लास होता है जो किसी भारतीय ऋषि की वाणी को पढ़ते हुए होता है। टॉल्स्टॉय की शिक्षाओं में अहिंसा, मत्स्य, अस्तय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का आधुनिक भाषा में जितना शक्तिशाली और विशद प्रतिपादन हमें मिलता है, उतना शायद ही किसी सुधारक की भाषा में हो।

इन सब बातों को देखते हुए, टॉल्स्टॉय के ग्रन्थों को पढ़ते हुए हमारे हृदय में एक अद्भुत आत्मीयता का भाव उमड़ता है। यदि यही इसाई धर्म का स्वर है तो हमारे वैदिक धर्म और इम क्रिश्चियानिटी में क्या अंतर रहा? सचमुच कोई अन्तर नहीं है। धर्म के मूलभूत तत्त्व सनातन हैं और समस्त मानव-जाति ही नहीं, परमात्मा की बनाई समस्त सजीव निर्जीव सृष्टि के लिए भी वे एक हैं। जो भेद हमें दिखाई देता है वह तपस्वीलों का है जा देश, काल आदि के साथ-साथ बदलती रहती है।

टॉल्स्टॉय इन्हीं मूलभूत तत्त्वों का अथवा सरल, सत्य सनातन नियमों का विश्लेषण करते हैं और भिन्न भिन्न रीति से इसी बात को अपने पाठकों के चित्त पर अंकित करने का यत्न करते हैं कि मानव-जाति के बन्ध्याण का उपाय इतना सरल नहीं हाता, जो दीन-से दीन और दरिद्री मनुष्य अपने दुःखों से निस्तार पाने की आशा कैसे कर सकता था ?

हमारी सामाजिक मूर्खता भी यद्यपि है वा बहुविध, परन्तु उसके

टूटने का उपाय भी अत्यन्त सरल है। हम इस ग्रन्थ में उसी सरल उपाय को टॉल्स्टॉय की वाणी में भारतीय समाज के सामने उपस्थित करत हैं। भगवान् सूर्यनारायण की तरह महापुरुषों की वाणी भी सावभौम होती है। आशा है हमारा समाज उनकी इन अमूल्य शिक्षाओं से अवश्य लाभ उठायेगा।

ऋखरवा (सीतापुर)

वैशाख सं० १९८१।

माधवप्रसाद मिश्र

निर्देशिका

- १ जमीन और मजूर ३-६६
- १—मानव-समान या पशुओं का मूण्ड
 - २—धर्म विभाग
 - ३—मजूरों के प्रति
 - ४—एक-मात्र उपाय
- २ सरकारें ६७ १५०
- १—समाज-सुधारकों से अपील
 - २—स्वदेश प्रेम और सरकार
 - ३—साम्यवाद—राजकीय तथा धार्मिक
 - ४—धराजकता
 - ५—सुधार के तीन तरीके
- ३ धर्म १५२-१७४
- १—धर्म का तत्त्व
 - २—प्रेम की परीक्षा
 - ३—बुद्धि और प्रेम
 - ४—चमत्कार और चमत्कार-कर्ता
- ४ युद्ध १७५-२०६
- १—युद्ध के कारण
 - २—दो युद्ध
 - ३—कोई लीज में भर्ती न हो
 - ४—युद्ध घुनी हुई बातें
- ५ स्त्री और पुरुष २०७-२३५
- १—पत्रों और दायरियों से—

सामाजिक कुरीतियां

और

उनको दूर करने के उपाय

१-जमीन और मजूर

२-सरकारें

३-धर्म

४-युद्ध

५-स्त्रो और पुरुष

जमीन और मजूर

- १ मानव-समाज या पशुओं का झुंड
- २ श्रम-विभाग
- ३ मजूरों के प्रति
- ४ एक मात्र उपाय

• मानव-समाज या पशुओं का झुण्ड ?

“मुझे सारा मनुष्य-समाज जानवरों के उस झुण्ड के समान—
 दिखाई दिया, जिसमें बैल, गाय और बछड़े सभी हैं और जो मजबूत
 तारों से घिरे हुए बाड़े के भीतर बंद हैं। बाड़े के बाहर हरी हरी घास
 का सुन्दर चरागाह है, और खुद-सी खाने-पीने की चीजें लगी हुई
 हैं बाड़े के भीतर उन जानवरों के खाने भर को काफी घास नहीं है,
 और इस कारण तो-खुद भी घास वहां है, उसको पाने के लिए वे
 जानवर अपने नुकाले तब सींगों से एक-दूसरे को बड़ी बेरहमी के साथ
 मार रहे हैं और एक-दूसरे को अपने पैरों के तले कुचल रहे हैं।
 मैंने देखा कि उन जानवरों का मालिक, जो एक अच्छे स्वभाव और
 ममक वाला आदमी था, उनके पास आया। उनकी हालत देखकर
 वह बड़ा हैरान हुआ, और सोचने लगा कि उनकी हालत का सुधारने
 के लिए कौन से उपाय काम में लाये जा सकते हैं। उसने सुन्दर, खूब
 हयादार और नानीदार गोशालाएँ बनायीं दीं, जिसमें रात में रहने के
 लिए जानवरों को सुभीता हो जाय। उसने उनसे सींगों के मिर मढ़वा
 दिए जिसमें वे अपनी जान बचाने की कोशिश में एक-दूसरे का
 अधिक निन्द्यता के साथ मार न सकें। उसने उम बाड़े का एक हिस्सा
 बड़े बैलों और गायों के लिए अलग कर दिया, इसलिये कि अपनी
 जिन्दगी के आखिरी दिनों में उन्हें पट का गदा भरने के लिए ज्यादा
 मिहनत न करनी पड़े और वे जीत रहने भर को काफी घास पा सकें।

इधर बछड़े दूसरे जानवरों से सताये जा रहे थे। कुछ भूख के मारे तड़प-तड़पकर मर रहे थे और इसलिए इस योग्य नहीं थे कि बढ़कर आगे चलें और कुछ काम दे सकें। इसलिए उसने यह इन्तजाम किया कि उन्हें रोज सधरे पीने को थोड़ा-सा दूध मिल जाया करे। हा, किसी को भी काफी दूध नहीं मिलता था, तो भी उन सभी को इतना-इतना दूध जरूर मिल सकता था कि वे जीवित रह सकें। वास्तव में उन पशुओं के स्वामी ने उनकी दशा सुधारन के लिए जो कुछ भी सह कर सका, किया, परन्तु जब मैंने उससे पूछा कि आप एक सीधी-सी बात क्यों नहीं करते, इस जगल को हटाकर इन पशुओं को इसक घाहर क्यों नहीं निकाल दते, जिससे वे मनमानी घास खा सकें और अपनी इच्छानुसार इधर-उधर घूम सकें, तो उसने उत्तर दिया— 'यदि मैं ऐसा करू तो उनका दूध मैं कदापि नहीं दुह सकता।'

श्रम विभाग

मनुष्य चाहे जहाँ और चाहे किसी अवस्था में भी रहे, उसका घर तथा उसके महल की ऊँची अट्टालिकाएँ आप-से आप नहीं बन जाती, उसके चूड़े में ईंधन आप-से आप नहीं पहुँच जाता, पानी भी आप-से आप नहीं आ जाता, और उसके खाने के लिए बना हुआ भोजन प्राप्त मान ही नहीं टपकता। उसका भोजन, उसके वस्त्र तथा उसके जूते आदि—ये मारी धीनें पहल के लोगों ने ही तैयार नहीं की हैं, बल्कि हम समय भा वे आदमी तैयार कर रहे हैं, जो रात दिन अधिक परिश्रम करने पर भी अपने आपको तथा अपने छोटे-छाटे बच्चों को यातनाओं एवं भूखों मरने से बचाने के लिए काफी भोजन और वस्त्र तथा रहने का स्थान नहीं पाते, जो रोग मैरुदों और हजारों की सख्या में मरते और मिटते चले जा रहे हैं।

सब मनुष्य दरिद्रता के चंगुल में पमे हुए हैं। उन्हें अपनी जीविका-उपाजन के लिए इतना कठिन परिश्रम करना पड़ता है और इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है कि उनकी धार्यों के सामने उनके माता पिता, भाई बहन तथा बच्चे भूम्य और दरिद्रता से उत्पन्न होने वाले रोगों के मार मरने चले जाते हैं। उनकी दशा एक दूट हुए, अथवा समुद्र में पड़े हुए जहाज पर के आदमियों के समान है, निनक पाम खाने-पीने का बहुत धाड़ा सामान बच रहा है। ईश्वर अथवा प्रकृति ने ही सभी मनुष्यों को जन्मा बना दिया है कि वे

अपनी जीविका का धाप उपाजन करें और जीवन की आवश्यकताओं के साथ निरंतर संप्राम करत रहें। अतः हमारा इस काम में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करना अथवा दूसरों से पूसा परिश्रम लना कि जिसका सावधानिक हित के लिए कोई उपयोग नहीं है, उनक तथा हमारा लिए एक समान घातक है। तो फिर क्या कारण है कि अधिकांश पद लिखे खुद तो कुछ भी परिश्रम नहीं करते, और उलटे शक्ति के साथ दूसरों से परिश्रम लत चल जाते हैं ? यदि उन बेचारा से यह फिजूल परिश्रम न लिया जाय तो वे अपनी आजीविका के लिए कोई उपयोगी काम तो करें। फिर पद लिखे लोग इस जीवन को स्वाभाविक और उचित क्यों समझते हैं ?

एक एक जूते बनाने वाले मीची को "दख्खर हमें बड़ा आश्चर्य होगा, जो समझता है कि लाग उस भोजन देने के लिए बाध्य है। क्यों ? इसलिए कि वह जूत बना रहा है, जिनके लिए उससे किमी ने भी धर्मार्थ नहीं की थी। पर हम उन सरकारी मुलाजिमों, धर्मार्थ कारियों या शिल्प एवं विज्ञान सम्बन्धा कार्य करने वाले धादमियों के सम्बन्ध में क्या कहेंगे, जो कोई ऐसी बात नहीं करते जो सर्व-साधारण के लाभ की हो ? नहीं—बल्कि जिनके काम की किसी को भी आवश्यकता नहीं है, फिर भी जो बड़े साहस के साथ समाज से धर्म विभाग के नाम पर अज्ञात भाजन और अल्प धन चाहते हैं ?

हां, हम मानते हैं कि धर्म विभाग वास्तव में हमारा से खला धार रहा है। परन्तु यह विभाग ठीक तभी सम्भला जायगा जब मनुष्य अपनी विवक-बुद्धि और शुद्ध अर्थकरण से इस बात का निष्पन्न करे कि यह धर्म विभाग किस प्रकार किया जाना चाहिए। यदि सभी मनुष्य अपनी विवक-बुद्धि से काम लें, तो इस प्रश्न का निबटारा बड़ी सरलता और निरक्षय के साथ हो सकता है। यह धर्म विभाग सच्चा तभी माना जा सकता है, जब किसी मनुष्य के कार्य का दूसरे लोग

रथक समझे कि ये उससे यह काम करने के लिए

कहें और इस सम्बन्ध में उनके लिए जो कुछ भी वह करे, उसके बदले में वे अपनी इच्छा से उसे भाजना, वस्त्र आदि देने का भार अपने ऊपर ले लें। परन्तु प्याल का लिए एक आदमी अपनी बाल्यावस्था से लेकर तीस वर्ष की उम्र तक दूसरों की ही कमाई पर गुलज़रें उड़ाता रहा, और यह वाद करता रहा कि मैं किमा समय काई बहुत ही उपयोग्य काम कर दिसाऊंगा, निम्के लिए ठमने किमा ने कमा कहा भी नहीं है—और, वह अपना विद्याध्ययन भी समाप्त कर चुकता है। पर इसके बाद भी वह अपनी बाकी निदगी उसी प्रकार बिता रहा है—हा, और बराबर घाटे करता चला जाता है कि मैं शीघ्र ही कोई अच्छा काम करूंगा। भला बताइए, यह भी कोई धर्म विभाग है ? यह तो बस्तुतः बलवानों द्वारा निर्बलों के परिधम का अनुचित उपमात करना है, निम् द्वैव वादियों ने 'भाग्य', दार्शनिकों ने 'जीवन की अनिवार्य अवस्था' तथा आधुनिक अर्थ-शास्त्रियों ने 'धर्म विभाग' की उपाधि दे रखी है। धर्म विभाग मानव-समाज में सदैव स रहा है, और मैं साहस के साथ कह सकता हूँ, सदैव रहेगा भी। परन्तु हमारे मामल प्ररन यह नहीं है कि यह हमरा से रहा है और भविष्य में भी हमरा रहगा। बल्कि वास्तविक प्ररन यह है कि इस धर्म विभाग को उचित धर्म-विभाग का रूप किम प्रकार दिया जा सकता है।

धर्म विभाग ठा है। "दन्विय न, कुद लोग मानमिक धर्म कर रह हैं, कुद आध्यात्मिक परिधम में लग हुण है और कुद मनुष्य शारारिक परिधम करन में स्थस्त हैं।" मनुष्य किम विरवाय क माय कहत है। उहें यह विचार सुगद मालूम हाता है इसलिये उन्हें इस स्थवस्था में अपनी मशामों का उचित परियतन दिमाई ता है, जो वास्तव में प्राचीन समय स होठा आपा भीषण अयाचार है।

"तू अयया तुम"—क्योंकि प्राय बहु-संख्यक लाग ही एक की सेवा किया करत हैं—"तुम मुझे भोजन दो, दम्य दो और मर लिए वह सब मोटा काम करो, जो करन के लिए मैं तुमस कह और तिमक

करने का तुम्हें अपने बचपन से अभ्यास रहा है, और इसके बदले मैं तुम्हारे लिए दिमागी काम करूँगा, जिसके करने का पहल से मुझे अभ्यास रहा है। तुम मुझे शारीरिक भोजन दो और मैं इसके बदले तुम्हें आध्यात्मिक भोजन दूँगा।”

यह कथन बिलकुल ही उचित जान पड़ता है और वास्तव में यह उचित ही होता, यदि सेवाओं का यह परिवर्तन स्वतन्त्र रूप से किया गया परिवर्तन होता, यदि वे लोग, जो शरीर के भोजन से हमारी वृत्ति करते हैं, आध्यात्मिक भोजन पाने के लिए शारीरिक भोजन देने को बाध्य न होत। आध्यात्मिक भोजन तैयार करने वाला मनुष्य कहता है,—“इसलिए कि मैं तुम्हें यह मानसिक भोजन दूँ मैं ममथ हो सऊँ, तुम्हें चाहिए कि मुझे भोजन दो, वस्त्र दो और मेरे घर की सफाई करो।”

परन्तु शारीरिक भोजन तैयार करने वाले मनुष्य को, अपनी ओर से बिना कोई मांग पेश किये, यह सब धुल्लू करना पड़ेगा। उसे शारीरिक भोजन देना ही पड़ेगा, चाहे उसे आध्यात्मिक भोजन मिले या न मिले। यदि यह परिवर्तन, स्वतन्त्र एवम् उचित रूप से किया गया होता, तो दोनों ओर की शक्तें समान हार्नीं। हम यह मानते हैं कि मनुष्य के लिए मानसिक भोजन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि शारीरिक भोजन की। एक विद्वान् शादमी अथवा शिल्पकार कहता है, ‘हमके पहले कि हम भोजन देकर लोगों की सेवा करना आरम्भ करें, हम चाहते हैं कि वे शारीरिक भोजन स हमें श्रुप्त करें।’

परन्तु शारीरिक भोजन देने वाले भी यह बयों न कहें—“इसके पहले कि शारीरिक भोजन देकर हम तुम्हारी वृत्ति कर सकें, हमें आध्यात्मिक भोजन की आवश्यकता है, और जब तक हमको यह न मिल जायगा हम परिधम नहीं कर सकेंगे।”

चाप कहते हैं—“जो आध्यात्मिक भोजन (Spiritual Food) खागों को दना है, उसके तैयार करने के लिए मुझ एक किमान, एक

खोहार, एक जूता बनाने वाला चमार, एक बट्टा, राज तथा दूसरे लोगों की जम्मत है।”

श्री मन्त्र भी यह कह सकता है—“तुम्हारे लिए शारीरिक मोचन तैयार करने के लिए परिश्रम करने के पहले मुझे ऐसी शिक्षा चाहिए, जो मेरी आत्मा को बलवान बनाए। परिश्रम करने की शक्ति प्राप्त हो, इसलिए मुझे धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है, यह जानने की आवश्यकता है कि समाज में मनुष्य का क्या स्थान है, श्रम के साथ बुद्धि का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। मुझे उस आनन्द और सुख की भाँजना है जो ललित कला में प्राप्त होता है। मेरे पास इस बात पर विचार करने का समय नहीं है कि जीवन का अर्थ क्या है। कृपया मुझे ये सब बातें बतलाइए।”

“मेरे पास इस बात पर विचार करने का समय नहीं है कि मार्ग जिनके जीवन के नियम क्या हैं, जिनमें न्याय का रक्षा की जा सके मुझे यह बतलाइए। मेरे पास अन्य विद्या, प्रकृति-दृग्गन, रसायन-शास्त्र आदि का अध्ययन करने के लिए भी समय नहीं है। मुझे ऐसी पुस्तकें दीजिए, जिनमें मुझे यह मातृम हाँसक कि मुझे अपने शौचालों में, काम करने के तम में, अरन रहने के घरों में तथा उनमें गर्मी और रोशनी पंखान आदि कामों में किस प्रकार सुधार करना चाहिए। मेरे पास इस बात के लिए भी समय नहीं है कि मैं ‘काय-शास्त्र, त्रिष विद्या तथा संगीत विद्या का भी अध्ययन कर सकूँ। मुझे आद्वान और आनन्द की यह सामग्री चाहिए, जिनकी जीवन के लिए परमावश्यकता है।”

श्री मन्त्र यह कहते हैं कि ‘हमारे लिए यह उपयोगी तथा आवश्यक कार्य करना शक्य-भव होगा अगर हम उन बातों में बचित रूप जायग वा धर्म-जीवी लोग हमारे लिए करते हैं परन्तु मैं कहता हूँ कि एक मन्त्र भी यह कह सकता है कि, यदि मुझे धार्मिक पथ प्रदान न मिले, जो मेरी बुद्धि तथा अन्तःकरण को आवश्यक है यदि मुझे एक न्याय-व्यवस्था मरकार न मिले, जो मेरे परिश्रम को रक्षा कर सके, यदि मुझे

वह शिष्टा नहीं मिलती, जिसमें अपने काम को आसान बना सकूँ, तथा यदि मैं ललित-कला के उपयोग से भी वंचित रखा गया, तो मैं खेत जोतना, तथा शहर की सफाई करना आदि उपयोगी तथा आवश्यक कार्य भी—जो आपके कार्य से कम उपयोगी और आवश्यक नहीं हैं—न कर सकूँगा। आपने अभी तक मानसिक भोजन के रूप में जो कुछ भी मेरी भेंट किया है, वह मेरे लिए सबधा-यथ है, बल्कि मैं यह भी नहीं समझ सका कि इससे किसी को लाभ पहुंच सकता है अथवा नहीं और जब तक मुझ यह सुराक न मिल जायगी, जिसका मिलना मेरे लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि दूसरों के लिए, तब तक मैं तुम्हारे लिए शारीरिक भोजन नहीं तैयार कर सकता।”

क्या हो, अगर मरू लाग पसा कहन लग जाय ? और अगर वे कहें, तो यह हसी (मजाक) नहीं बल्कि सीधी-सादी न्याय की बात होगी। यदि एक धर्मजीवी पसा कहता तो बौद्धिक परिश्रम करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा उसकी यह बात कहीं अधिक न्यायाचित और ठीक होगी क्योंकि बुद्धि-सम्बन्धी काम करने वाले मनुष्य के परिश्रम की अपेक्षा धर्मजीवी मनुष्य का परिश्रम अधिक आवश्यक और उपयोगी है। फिर एक बुद्धि वाले मनुष्य के माग में औरों का यह मानसिक भोजन दिन में काढ़ रकावट नहीं, जिसके दिन का उसने खादा किया है; किन्तु धर्मजीवी मनुष्य तो शारीरिक भोजन इसलिये नहीं दे सकता कि खुद उमक पास भोजन की कमी रहती है।

तो फिर, हम मानसिक परिश्रम करने वाले मनुष्य क्या उत्तर देंगे यदि हमारे सामने पसी सीधी-सादी और न्यायाचित मांगें पेश कर दी जाय। हम इन लोगों की कैस पूर्ति करेंगे ? हम यह भी नहीं जानते कि धर्म-जीवियों को किन बातों की आवश्यकता है। हम तो उनके रहन-सहन के तरीकों उनके भाव और उनकी माया का भी भूल गये हैं। हम तो ऐसा छोड़े हा गये हैं कि हमने अपने उस कलम का भी भुला दिया, जो हमने अपने ऊपर खे लिया है। हमें पता नहीं कि यह

परिश्रम हम किमलिप्त करत हैं, और जिन लोगों की सेवा का भार हमने अपने ऊपर लिया है, उनको हमने अपनी वैज्ञानिक एवं कला-सम्यग्धी प्रवृत्तियों का एक लक्ष्य-मात्र बना लिया है। हम अपने अंदर और मन-बहलाव के लिए उनका अध्ययन और उनकी गराबी का ध्यान करत हैं। हम हम बात को विलकुल भूल गये हैं कि हमारा कर्तव्य यह नहीं कि उनका अध्ययन करें और उनकी दशा पर लम्बे-चौड़े लग्न लिखें, बल्कि यह है कि हम उनकी सेवा करें।

अब समय है कि हम मचेत हों, और अपनी दशा पर और भी सूक्ष्म-दृष्टि से विचार करें। हमारी दशा ठीक उन घमाधिकारियों के समान है, जो ईश्वर के मात्राज्य का कुत्ता तो अपने हाथ में लिये हुए हैं, पर जान तो खुद अन्दर घुमते हैं, और न दूसरों को घुमते देते हैं।

हम अपने माह्र्यों का निन्दगी को खा रहे हैं और तिम पर भी अपने आपको सच्चे, धमनिष्ठ, दयालु, शिक्षित और पूर्ण पुण्यवान् मनष्य समझते हैं।

मजूरों के प्रति

Ye shall know the truth and the truth shall
make you free —Jhon VIII-32

“तुम सत्य को पहचानो वही तुम्हें मुक्त करेगा” जॉन अ० ८ ३२

मेरे जीवन के अब अधिक दिन शायद नहीं हैं, और मरने के पहले, धर्म-जीविता, मैं तुम्हें व सारी बातें, जो मैंने तुम्हारी इस दलिततावस्था के सम्बन्ध में साची हैं, और सभी उपाय जिनसे तुम अपने आपको इससे मुक्त कर सकत हो, बतला देना चाहता हूँ।

सम्भवतः, मैंने इस सम्बन्ध में जो कुछ भी सोचा है (और मैंने इस विषय में बहुत-कुछ साचा है) और अब भी जो सोच रहा हूँ, वह तुम्हारे लिए हितकर सिद्ध हो।

जैसा कि स्वाभाविक है, मैं व बातें इस के धर्म पाठियों को ही सम्पादन करके कहता हूँ। उनका बीच में रहता हूँ, और उनको मैं दूसरे देशों में धर्म जीवियों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से जानता हूँ। पर मुझे आशा है, मेरे कुछ विचार दूसरे देशों के धर्म-जीवियों के लिए भी स्पर्ध सिद्ध न होंगे।

धर्म जीवियों, तुम अपनी सारी जिन्दगी दुःख दारिद्र्य एवं कठिन परिश्रम में, जिनकी तुम्हारे लिए बिलकुल आवश्यकता नहीं है, मिताम के लिए मजबूर किये जाने हो, और दूसरे लोग जो कि ज़रा भी काम नहीं करते, तुम्हारी पैदा की हुई चीजों से पापदा उठाते हैं, और तुम

उनके दाम होकर रहने हो, पर यह बात अब प्रायः सभी सहृदय और समझदार मनुष्यों पर विदित हो गई है कि वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए।

पर इस दशा को दूर करने का उपाय क्या है ?

पहला उपाय तो यह है, जो पुराने जमाने में मिलकुल मीथा और स्वाभाविक मालूम होता आया है कि जा लोग तुम्हारे परिश्रम में अनुचित लाभ उठाते हैं, उनसे वह जबरदस्ती छीन लिया जाय। यही बात प्राचीन समय में रोम के गुलामों ने और मध्यकालीन युग में जमनी तथा फ्रान्स के किसानों ने की थी। स्टैकोरज़िन तथा बोगैको के समय में रूस के निवासियों ने भी इसी उपाय का अवलम्बन किया था। इस समय भी कभी-कभी रूसी जमनीवा यही किया करते हैं।

दु गिरत श्रमजीवी-समाज को दूसरे उपायों की अपेक्षा, यह उपाय सरल जल्द दिग्गह देता है। पर तो भी इससे कमा उनके उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी। नहीं, बल्कि इससे तो उलटा उनकी दशा सुधरने की अपेक्षा और भी बिगड़ती चली जाती है। पुराने जमाने में, जब सरकारें धान की तरह शक्तिशालिनी नहीं थीं, ऐसी शक्तियों से विजय की आशा की जा सकती थी। परन्तु हम समय तो, जब कि उनके हाथ में बड़े-बड़े स्वयं, रत्न, धार, पुलिस, फौज और मीपाही हैं, ऐसी शक्तियों का परिणाम, प्रायः यही हुआ करता है कि उपद्रव करने वालों को नाना प्रकार के दण्ड और यातनायें भोगनी पड़ती हैं और वे फासी तक पर चढ़ा दिये जाते हैं। नतीजा यह निकलता है कि श्रम-जीवियों पर दूसरों की मत्ता और भी मजबूती के साथ चम जाती है।

श्रम जीवियों, हिंसा का मुकाबला हिंसा से करके, तुम बही कर रहे हो जो मजबूत रस्मों में बँधा हुआ मनुष्य भागन के अमिप्राय से उन्हीं रस्मों का परकड़कर बँचा करता है, जिनमें कि उसके सारा शरीर जकड़ा हुआ है। इससे तो उसके बन्धन की गाँठें और भी अधिक कस जायगी।

बल प्रयोग द्वारा छीनी हुई वस्तु को फिर से लेने के लिए बल का प्रयोग करना भी उसी के समान है।

(२)

यह बात अब प्रायः सभी पर विदित हो गई है कि इन उपद्रवों से हमारा उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होगी। इससे सुधरने की अपेक्षा श्रम-जीवियों की अवस्था और भी बिगड़ जाती है। इसलिए धर्मजीवी समाज के हित चिन्तकों ने अथवा उनके हित चिन्तक होने का दावा करने वालों ने अभी हाल में श्रम-जीवियों को स्वतंत्र करने के लिए एक नय उपाय का आविष्कार किया है। इस उपाय का मुख्य आधार यह शिक्षा है— 'जिसे जमीन के वे किसी समय मालिक थे, उसे छोड़कर वे बारातानों में मजदूरी पर काम करने लगे। (और इस शिक्षा के अनुसार यह एसा ही अनिवाय है, जैसा कि किसी नियत समय के ऊपर सूर्योदय का होना) फिर सघों और सभाओं की स्थापना करके और पालमेसट म अपने प्रति निधि भ्रूकर क्रमशः अपनी दशा सुधारत रहें और अन्त में समस्त कल-कारखानों और मिलों के, बल्कि पैदावार के सम्पूर्ण साधनों के, जिनमें जमीन भी शामिल है, मालिक बन बैठें, इससे बिलकुल स्वतंत्र और मुसी हा पायगे। यद्यपि जिस शिक्षा के आधार पर इस उपाय का आविष्कार हुआ है, वह अन्धकारमय, अर्थिक विजय दिलाने वाली अस्पायी सन्नवीजों तथा विरोधी बातों से भरी हुई और बिलकुल भ्रूतना पूर्ण है तो भी इधर कुछ दिनों से हमका बड़ा प्रचार हो रहा है।

इस शिक्षा का केवल उन देशों ने ही नहीं अपनाया है, जिनमें अधिकांश जन-समुदाय ने पीढ़ियों से खेती छोड़ दी है, किन्तु उन देशों ने भी उसे मान लिया है, जिनमें मजूर-वर्ग ने जमीन छोड़ इन के सन्बन्ध में अभी विचार भी नहीं किया है।

इस शिक्षा का पहला उद्देश्य यह है कि गाँवों में रहने वाले धर्मजीवी, अपने गेती-सम्बन्धी नाना प्रकार के कामों को छोड़कर, जिनके करने का उन्हें अव्याप्त हो गया है और जो स्वास्थ्य तथा सुख इन वाले

हैं, एक हा प्रकार के और हिरान कर देने वाले अस्वाम्यकर, कुम्भित तथा हानिकर कामों में लग जाय। इस शिक्षा का उद्देश्य यह है कि एक प्रामीण अपनी उम्र प्यारी स्वतंत्रता को छोड़कर त्रिममें कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने हा परिश्रम से कर लेता है—कारखानों में काम करने वाले श्रम जावियों का परतन्त्र जीवन बिताने लग, और हर बात में अपने मालिक क अधीन हो जाय। जरा गौर करने पर मालूम होगा कि जमी शिक्षा का इन देशों में किसी प्रकार की कोट मरलता नहीं मिलना चाहिए, न मिल सकता, जहा के अधिकार श्रमजीवी अब भी अपना पट खता म पालत है।

लेकिन इस शिक्षा का, जो कि साम्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है, रूस जैसे देशों में भी, जहा पर १८ प्रतिशत श्रम-जीवी-समाज की नींविका का साधन खेता है, उन दो प्रतिशत मनुष्यों ने बड़ा प्रयत्नता क माय स्वीकार कर लिया है, जिन्होंने तथा को छाड़ दिया है।

इसका कारण क्या है ? यह कि मजूर आत्मी मंत्री का छोड़कर, उन प्रलोभनों क चगुल में पम जाता है, ज शहर और कारखानों के जीवन के माप लग हुए है। और उमके इन प्रलोभनों का समथन साम्यवादियों का शिक्षा से हो जाता है, जो आवश्यकताओं की वृद्धि को मनुष्य का उन्नति का एक चिन्ह समझता है।

जमे मजूर लोग साम्यवाद का इस शिक्षा की अपूर्वी बातों को लेकर बड़ तार क माय उमका अपने मगा-भाषियों में प्रचार करत हैं और इस प्रचार तथा इन नवीन आवश्यकताओं के कारण, जिनको कि उन्होंने बिना प्रयाजन पैदा कर लिया है, अपने आपको उन्नतिशाल सुधारक समझन लगत है और गार क माधा-मादा जिन्दगी बसर करने वाले किमानों म अपने आपको कहीं ज्यादा हैसियत और दर्जेवाला जिनन लग जात है। मौसाम्य म रूस में जम श्रमजीवियों की मन्व्या अभी बहुत घादी है। रूस क अधिकार श्रम जावियों ने तो साम्य-

वादियों की इस शिक्षा का कभी नाम तक नहीं सुना है और यदि इस सम्बन्ध में को- बात वे मुने भी ता इस शिक्षा का अपन लिए एक बिलकुल नई और अतावश्यक बात समझन हैं। निस्तका उनकी म-ची जरूरतों से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

यूनियन कायम करना, जुलूस निकालना, पालमट में अपन प्रति निधि भेजना आदि साम्यवादियों की इन सारा बातों से निनकी सहायता स कारगराना में काम करनेवाले श्रम जीवी अपने इस टास-जीवन से मुक्त होने का प्रयत्न करत है, स्वतंत्र जीवन यतीत कर्न वाले प्रामीण श्रम-जात्रियों को कोई भी दिलचस्पी नहीं।

गात्र के मजूरों को इस बात को जरूरत नहा कि उनका मनदूरा बढ़ाई जाय या उनके काम करने के घट बम कर निय नाय अथवा सहयोगी सस्याण योली जाय बलिक उनर लिए सजये जरूरी है एक चीज—जमान ! जमान सभी जगह उनक पास इनती कम ह कि उससे वे अपने कुटुम्ब का पट भी नहा भर सकत। परन्तु इसके सम्बन्ध में, निमकी गात्रों के लोगों को सवमे ज्यादा जरूरत है, साम्यवादिया की आर से कुछ भी नहीं कहा गया है।

विद्वान् साम्यवादी कहत है—“रुगद का स्वाम चीनें है राने, बज-कारखाने और इसके बाद जमीन।” वे कहत है कि, मजूरों को चाहिए कि जमाने लने के लिए पहल वे मिलों और कारखानों पर अधिकार प्राप्त करें और इस तरह पू जीपतियों पर विनाय पा लन के बाद जब ये सब चीजें उनके हाथों में आ जायगी तब थ जमीन पर भी अपना अधिकार कर सकेंगे। आश्चर्य यह है कि लोगों को तो जमान की जरूरत है परन्तु उनमे कहा यह जाता है कि उम प्राप्त करने के लिए उन्हें पहले उसे धाड़ दना होगा, इसके बाद एक बहुत ही पेचीदा रग से, निस्तका आत्रिष्कार साम्यवाद का दम मरनवाल महापुरुषा न ही किया है मिलों और कारखानों के सहित जिनकी बेघारे मजूरों को

ये बातें स्त्री क्रान्ति के पहले की हैं, समय-वक्र न हूँ अमप्य निद कर दिया है। —मम्पादक।

बिलकुल आवश्यकता नहीं है, उसे वे फिर प्राप्त कर लेंगे। यह तो वही दग हुआ जैसा कि कुछ सूदखोर महाजन किया करते हैं। आप एक महाजन से एक हजार रुपये मांगते हैं, सिर्फ एक हजार रुपये की जरूरत है, लेकिन महाजन आपसे कहता है,—“मैं आपको सिर्फ एक ही हजार रुपये नहीं दूंगा, आप पांच हजार रुपये लातिए, तिनमें से चार हजार के मातुन के दुकदे, रेसामी कपड़ा और बहुत-सी चीजें होंगी।” यद्यपि आपको तो इनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है, फिर भी वह तो आपका एक हजार रुपये इसी शर्त पर दे सकता है। यह साम्यवा-दियों की दलील भी ठीक ऐसी ही है।

साम्यवादी लोगों ने बिलकुल ही गलत तौर पर यह तय कर रखा है कि जमीन परिश्रम करने का वैसा ही साधन है, जैसे कि मिल अथवा कारखाना, और श्रम नीतियों को, जो बंगल जमान न होने के कारण ही कष्ट देता रह है यह सलाह देते हैं कि वे अपनी जमीनों को छोड़ दें, और उन कारखानों पर कब्जा करने में लग जाय, तिनमें तोप, बन्दूक, हथ-तन, सायुध, शीशे-शीते और हर प्रकार की विलासिता की सामग्री तैयार की जाती है। कारखानों पर अधिकार कर चुकने के बाद जब मजूर शीघ्र अथवा फाता आदि बस्तुएँ शीघ्रता और उत्तमता के साथ बनाना सीख चुकें होंगे और जमीन के जोतन-गोठने और उस पर काम करने के बिलकुल अयोग्य हो गये होंगे—तब तब उन्हें जमीन पर भी कब्जा करने का कहा जाता है।

(३)

भती करना और टममे अथवा पट भरना मुख्य और स्वतन्त्र मनुष्य जीवन की एक मुख्य शत रही है और भविष्य में भी हमेशा रहेगी। यह बात सभी लोग सबत्र जानते हैं और इसलिए सभी मनुष्य किसी वेम जीवन के लिए हमेशा प्रयत्न करते हैं और भाग भी करते ही रहेंगे, जैसे कि पानी में जाने के लिए मदली किया करती है।

परन्तु साम्यवादियों का कहना है कि मनुष्यों का जीवन मुख्यतः

वादि्यों की इस शिक्षा वा कभी नाम तक नहीं सुना है और यदि इस सम्बन्ध में कोई बात वे सुनें भी तो इस शिक्षा को अपने लिए एक दिनभूल नई और अनावश्यक बात समझते हैं। जिसका उनकी सच्चा जरूरतों से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

यूनिथन कायम करना, जुलूस निकालना, पालमेष में अपने प्रति निधि भेजना आदि साम्यवादिओं की इन सारी बातों से, निन्की सहायता से कारखानों में काम करनेवाले श्रम चीरी अपने इस दास-जीवन से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं स्वतंत्र जीवन व्यतात करने वाले प्रामीण श्रम चीरियों का कोई भी दिलचम्पी नहीं।

गाव के मजूरों की इस बात का जरूरत नहीं कि उनका मजदूरा बढ़ाई जाय वा उनका काम करने के घंटे कम कर दिये जाय अथवा सहयोगी सस्थाएँ खाली जाय, बल्कि उनके लिए सत्य जरूरी है एक चीज—जमीन। जमीन सभी जगह उनका पास इतनी कम है कि उससे वे अपने कुटुम्ब का पेट भी नहीं भर सकते। परन्तु इसका सम्बन्ध में, निन्की गावों के लोगों को सबसे ज्यादा जरूरत है साम्यवादियों की धार से कुछ भी नहीं कहा गया है।

विद्वान् साम्यवादी कहते हैं— "कगड़े को खास चीजें हैं खाने, कल-कारखाने और इसके बाद जमीन।" वे कहते हैं कि, मजूरों की चाहिण कि जमाने लेन के लिए पहले वे मिलों और कारखानों पर अधिकार प्राप्त करें और इस तरह पू जीपतियों पर विजय पा लान के बाद जब वे सब चीजें उनके हाथ में आ जायगा, तब वे जमीन पर भी अपना अधिकार कर सकेंगे। आश्चर्य यह है कि लोगों का तो जमीन की जरूरत है, परन्तु उनसे कहा मह जाता है कि उस प्राप्त करने के लिए उन्हें पहले उसे छोड़ देना होगा, इसके बाद एक बहुत ही पचीदा दम से, जिसका धारिष्कार साम्यवाद का दम भरनेवाले महापुरषों ने हा किया है मिलों और कारखानों के सहित निन्की बेचारे मजूरों को

१५ बाले स्त्री प्रान्ति के पहले की है समय-बद्ध ने इन्हें अत्यन्त विद्व कर दिया है। —सम्पादक।

विलकुल आवश्यकता नहीं है, उसे वे फिर प्राप्त कर लेंगे। यह तो घड़ी ढग हुआ जैसा कि कुछ सूदम्भार महानन किया करते हैं। आप एक महानन से एक हजार रुपये मागते हैं, सिफ एक हजार रुपये की जरूरत है, लेकिन महानन आपसे कहता है,—“मैं आपको सिफ एक ही हजार रुपये नहीं दूंगा, आप पाच हजार रुपये लाविए, तिनमें से चार हजार क साबुन के टुकड़, रेशमी कपड़ा और बहुत-सी चीजें होंगी।” यद्यपि आपको वा इनकी विलकुल आवश्यकता नहीं है फिर भी वह तो आपका एक हजार रुपये इमा गर्त पर द सकता है। यह माम्यवा-दियों का दलाल भी ठीक ण्सी ही है।

माम्यवादी लागों न विलकुल ही गलत तौर पर यह तय कर रखा है कि जमीन परिश्रम करन का वैसा ही माघन है, जैसे कि मिल अथवा कारखाने, और श्रम-जीवियों को, जो केवल जमान न होने के कारण ही कष्ट टठा रह है यह सलाह त्त है कि वे अपनी जमीनों को छोड़ दें, और उन कारखानों पर कर्जा करन में लग जाय, तिनमें तोप, बन्दूक, इत्र-तन, माबुन, गीने-जीते और हर प्रकार की विलासिता की सामग्री तैयार की जाती है। कारखानों पर अधिकार कर चुकने क बाद जब मजूर शीगा अथवा फीता आदि वस्तुण शीघ्रता और उत्तमता क साथ बनाना माग्य चुक होंग और जमान क जातन-बजोने और उस पर काम करने क विलकुल अयोग्य हो गय होंग—तब ट-हें जमीन पर भी कर्जा करने को कहा जाता है।

(३)

भरती करना और उसमे अपना पेट भरना सुखमय और स्वतन्त्र मनुष्य जीवन की एक मुख्य शत रही है और भविष्य में भी हमशा रहेगा। यह बात सभी लाग सबज जानते हैं और इसलिप् ममा मनुष्य किमी ऐस चीजन के लिण हमशा प्रयत्न करत है और भाग भी करते ही रहेंग, तैस कि पानी में जान क लिप् मदुली किया करती है।

परन्तु माम्यवादियों का कहना है कि मनुष्यों का जीवन सुखमय

घनाने के लिए उन्हें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वे जंगलों और पशुओं के बीच में रहें, जहाँ पर लोग लगभग अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति खेतों में काम करके ही कर सकते हैं। उनके खयाल से तो लोग एसे स्थानों में रहना चाहते हैं, जो उद्योग धंधों और कारीगरी के केन्द्र स्थान हैं, जहाँ का वायु बहुत ही दूषित है और लोगों का जरूरतें दिन पर दिन बढ़ती ही रहती है, और चिनका पूर्ति कारखानों में रात दिन, शक्ति से अधिक, काम करके ही की जा सकती है। कारखानों के इस जीवन में फसत हुए बेचारे मजूर भी इस बात पर विश्वास कर लत ह और यह समझकर कि वे काइ बहुत बड़ा और जरूरी काम कर रहे हैं, अपनी सारी शक्ति पू जीपतियों के साथ इस बात की लड़ाई लड़ने में लगा दते ह कि उनके काम करने के घट घटा दिया जाय और मजदूरी बढ़ा दी जाय, जब कि वास्तव में, जमीन से अलग कर दिया गया मजूरों के लिए मजदूरी अधिक जरूरत इस बात की है कि वे किसी प्रकार के उपाय की सोच करें, जिससे फिर जमीन प्राप्त करके खेती कर सकें और प्रकृति के साथ आनन्दमय नैसर्गिक जीवन व्यतीत कर सकें। उन्हें अपनी सारी शक्ति इसी बात में लगा देनी चाहिए। साम्यवादी कहते हैं—“अगर यह बात सच भी हो कि प्रकृति की गोद में रहना कल कारखानों के जीवन की अपेक्षा अधिक अच्छा है, तो भी कारखानों में काम करने वाले श्रमजीवियों की सख्या इस समय इतनी बढ़ गई है और श्रमक-जीवन से अलग हुए उनको इतना समय हो गया है कि श्रमक-जीवन में वापस आना उनके लिए घातुकल सम्भव ही नहीं है। यह अत्यन्त दुःखकर है कि इस प्रकार शहरी जीवन से दहाती जीवन को लौट आने से स्पर्ध ही उन चीजों की पैदायश कम हो जायगी, जो इन कारखानों में तैयार की जाती है और जो राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक अङ्ग है और यदि मान लिया जाय कि एसा न भी हो तो भी श्रमक जमीन इतनी कार्पी कहा है, जिससे कारखानों में काम करने वाले सभी आदमियों का धाराम के साथ भरपूर-पोषण हो सक ?”

पर यह बात गलत है कि कारखानों में काम करने वाले आदमियों के फिर से गावों में लौटने और खेती में लग जाने से राष्ट्र की सम्पत्ति घट जायगी। क्योंकि खेती करने वाले अपना थोड़ा-सा समय घर पर या कारखानों में जाकर भी तो दूसरे उद्योग धन्धों में लगा सकते हैं। उन्हें कौन रोकता है ? हा, यत्कि इस फेर-बदल से यदि बड़े-बड़े कारखानों में तेजी से तैयार हान वाली अनुपयुक्त और हानिकर चीजों की पैदावार कम हो जाय और साधारणतया आवश्यक वस्तुओं का भी आवश्यकता से अधिक तैयार करना बन्द हो जाय, तथा अन्न, साग भाजी, फल और घरलू पशुओं की संख्या बढ़ जाय, तो इसमें किमा भी प्रकार से राष्ट्र की सम्पत्ति कम नहीं हो सकती, यत्कि उलटी उममें घृष्टि ही हो जायगी।

यह दलील भी ठीक नहीं है कि जमीन इतनी काफी न हो सकेगी कि कारखानों में काम करने वाले सभी आदमियों का आराम व साथ भरण पोषण हो सके। क्योंकि अधिकांश देशों में वह जमान जो बड़े-बड़े जमींदारों का सम्पत्ति है, कुल श्रम-जीवियों के भरण पोषण के लिए काफी होगी, अगर जमान की तुलाई-बुझाई पृथक् आधुनिक ढंग से की जाय, अथवा कबल उम तरह भी की जाय, जैसा सहस्रों वर्ष पूर्व चीन देश में की जाती थी।

इस विषय से प्रेम रखने वाले मज्जन प्रोफेसरिन के "दि कांस्ट्रैक्शन् प्रोब्लेम" और "फील्ड्स, फैक्टरीज एण्ड वर्कगाउस" (खेत, कारखाना और कार्यालय) नामक पुस्तकों को पढ़ें। तब उनका पता चल जायगा कि अच्छी तुलाई-बुझाई से जमीन की पैदावार किमि हद तक बढ़ जाता है, और उतनी ही जमीन से खिलने अधिक आदमियों को भोजन मिल सकता है। धीरे धीरे छोटे-छोटे किमान भी वैज्ञानिक ढंग से खेती करना आरम्भ कर देंगे, अगर वे अपना मारा मुनाफा धनी

१ इस पुस्तक का अनुवाद हमारे यहाँ से निरुक्त हुआ है। नाम 'रोटी का मसाल' और दाम १) है।

जमींदारों के हवाले कर देने के लिए मजबूर न किये जाय, जैसा कि अभी किया जाता है। साधारणतया जमींदार लोगों को जा कि इन गरीब किसानों को अपनी जमानें किराये पर देते हैं उपज बढ़ाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि उन्हें तो, बिना किसी कष्ट उठाये हा काफी रकम मालगुजारा में मिलती रहती है।

एक दलील और है। "जमीन इतनी कहा है, जो सब मजूरों को मुफ्त दी जा सके। इसलिए अब इस बात पर परेशान न होइए।" कैसी अजीब बात है ? पहले तो किसानों से जमीनें छानी जाती हैं और अब कहा जाता है कि जमानें काफी नहीं हैं, परेशान मत होइए। एक मकान बिलखुल खाली पड़ा हुआ है, और कुछ आदमी शीतकाल में भयकर ठण्डापात के समय उस मकान के बाहर खड़े हुए आश्रय के लिए, प्रार्थना कर रहे हैं। मकान का मालिक कहता है—“मकान के भीतर इन आदमियों को आने देना उचित नहीं है क्योंकि उसमें उन सबके लिए जगह न मिल सकेगी।” उपर्युक्त जमीन वाली दलील भी ठीक यही ही है, ठीक ता यह है कि जा लाग आश्रय के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, उनका आन दिया जाय फिर इसके बाद देखा जायगा कि उसमें उन सबके लिए स्थान मिल सकता है, या फल धावे-से आदमियों के लिए ही। अगर उन सबके लिए स्थान मिल सके, तो जो लाग उसमें आ सकत है उन्हीं का क्यों न स्थान दिया जाय ?

ठीक यही बात जमान के सम्बन्ध में भी है। जो जमीनें धर्मजीवियों से ले ली गई हैं, उन्हीं लोगों के हवाले कर देना सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, फिर यह देखा जायगा कि यह जमीन सबके लिए काफी होगी या नहीं।

यह बिलखुल गलत है कि दुनिया के सभी मजूर आदमियों के लिए जमीन काफी न होगी। अगर कारखानों में काम करने वाले आदमियों का निर्वाह बाजार से सरीद हुए अन्न के ऊपर हो सकता है, तो कोद कारण नहीं कि दूसरों का पैदा किया हुआ अन्न माल देने के बदले वे स्वयं इस जमीन का क्यों न जाते और थायें, फिर यह जमीन

हिन्दुस्तान, अर्नेस्टाइन, आस्ट्रेलिया, साइबेरिया, अथवा और कहीं पर भी क्यों न हो।

इसलिए तमाम वे सब दलीलें बेतुनियाद हैं जिनमें कहा जाता है कि कारखानों में काम करने वाले मजूरों को खेती नहीं करनी चाहिए या उनके लिए इतनी जमीन नहीं मिल सकती या वे गेती कर ही नहीं सकते। इसके विपरीत यह बात सफ है। ऐसे फेर-बदल से जनता का हानि के बदले उपकार ही अधिक होगा और निश्चय ही इसमें भारतवर्ष तथा रूस आदि देशों से अकालों का समूल नाश हो जायगा, जो बहुत समय से वहा अड़ा जमाये हुए हैं। य अकाल इस बात को बताते हैं कि आनकल जमीन का जो ध्वारा किया गया है, वह बिलकुल अनुचित और गलत रीति पर किया गया है।

हाँ, यह सच है कि जिन देशों में कल-कारखानों के व्यवसाय ने बहुत उन्नति कर ली है, जैसा कि इंग्लैण्ड, बेल्जियम तथा संयुक्त-राज्य (अमेरिका), क) कुछ स्थानों में है, वहा के श्रमजीवियों का जीवन बिलकुल मिष्ट हो गया है। उनका, अथ नेहातों में वापस लौट आना और गेती करन लग जाना बहुत कठिन जान पड़ता है। परन्तु इसमें यह मिद्ध नहीं होता कि उनका नेहातों में लौट आना ठाक नहीं। और इसमें किसी प्रकार का लाभ हानि की सम्भावना नहीं। इस पर अमल करन के लिए सबसे पहले नम्बरत इस बात की है कि मजूर लोग यह समझ लें कि उनके हित के ध्यान से गाँव में लौट जाना उनके लिए बहुत जरूरी है। और उन्हें चाहिए कि वे अपने कारखानों के इस दाम्प-जीवन को ऐसा न समझ लें, जो हमारा टिकन वाला हो अथवा जिनमें कोई फेर-बदल न हो सकता हो। वे निश्चयपूर्वक जान लें कि उनका यह जीवन प्रकृति के विरुद्ध है। और उसको बदल देने में ही उनका भला है। और यह समझ कर वे इस-पर धमल करने के उपाय ठु दन में लग जाय।

इस प्रकार उन मजूरों को, जिन्होंने बहुत काल में अपने घर-दादों की जमीनें और घर-बार छोड़ दिये हैं और जो कारखानों में काम करके

अपना पेट पाल रहे हैं, इस बात की जरूरत नहीं कि वे अपने मजूर सभ बना लें और हड़तालें करें और बच्चा की तरह सड़कों पर जुलूस निकालें। उनके लिए तो सिर्फ एक बात ही जरूरत है, और वह यह कि वे ऐसे उपायों की सोच करें, जो उन्हें कारखानों की इस गुनामी से मुक्त कर दें और जमीन के ऊपर उन्हें अधिकार दिला सकें। उनके मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है, जमींदारों द्वारा जमीन पर अनुचित अधिकार करलना। जमींदार कभी जमीन पर सुद काम नहीं करते, पर जमीन पर अधिकार जमाये बैठे हैं। यही एक बात है जिसके लिए मजूरों को अपने शासकों से प्रयत्न करनी चाहिए और अपनी माग पेश करनी चाहिए। उसमें जरा भी डरने की बात नहीं है। जमीन उनकी है अतः उस मागना अपने निश्चित और न्यायाचित अधिकार को वापस मोगना होगा। जमीन के ऊपर रहना, और उस पर मेहनत करके अपना पेट भरना प्रायिक प्राणी का स्वाभाविक अधिकार है। इसके लिए किसी से आज्ञा मांगने की कोई जरूरत नहीं।

(४)

जमीन पर से खानगी मालिकी का अन्त कर देना अब बहुत जरूरी हो गया है। क्योंकि जमींदारों के अन्याय, स्वच्छाचारिता और धरपाचार की अब हद हो गई है। पर प्रश्न केवल यही है कि इसका अन्त हा किम प्रकार ? रूस तथा अन्य सभी देशों में गुलामी की प्रथा का अन्त सरकार की आज्ञा से किया गया था और जसा जान पड़ता है कि भूमि का किसी एक व्यक्ति अथवा समाज की सम्पत्ति मानने का प्रथा का भी अन्त इसी प्रकार सरकार की ओर से जारी की गई आज्ञाओं से हो सकता है। परन्तु सरकारें प्रायः जमी आज्ञाओं बहुत कम दिया करती हैं।

सभी सरकारें एक ही आदमियों की बनी हुई हैं, जो दूसरों की कमान पर गुलदरों उठाना चाहते हैं और दूसरा बातों की अवेष्टा जमींदारी की प्रथा में जमे जीवन की सम्भावना बहुत कम है। केवल

शामक और जमींदार-समान के ही लोग इस प्रथा का अन्त करने का विरोध न करेंगे, बल्कि वे जाग भी जो सरकारी कर्मचारी अथवा जमींदार न हात हुए भी धनिक-समाज तथा उसे सरकारी कर्मचारियों, शिक्षकारों, वैज्ञानिकों और व्यापारियों के पास नौकर हैं। वे यह समझकर इसका अन्त करने में विरोध करेंगे कि उनके पेशे आराम का सारा दारोमदार इस जमींदारी के ऊपर है। वे सदैव उसका समर्थन करते हैं अथवा और सभी ऐसी बातों की आलोचना करते हैं, जो हममें कम महत्त्व की हैं, पर जमींदारी के प्रश्न को कभी छूते तक नहीं हैं।

अधिकार संप्रेषण लोग, अगर जान बूझकर, नहीं तो अज्ञान से ही, यह समझते हैं कि उनकी अच्छी स्थिति का कारण जमींदारी ही है।

यही कारण है कि राष्ट्रीय महासभा (पार्लमेंट) लोगों को यह दिलाने भर के लिए कि वे जनता की शुभ चिन्तक हैं, और वे जो कुछ भी करती हैं उसकी भलाई के स्थान से ही करती हैं, ऐसे अनक प्रस्तावों पर याद दिवादा करती हैं और उन पर अमल करना भी आरम्भ कर देती हैं, जिनमें वे यतलाती हैं, लोगों की दशा सुधरेगी। पर एक बात को वे सब बिलकुल छोड़ देती हैं, जिसकी लोगों को मध्यमे अधिक आवश्यकता है और जिसमें लोगों की दशा का वास्तविक सुधार हो सकता है और वे एक उन्नत राष्ट्र बन सकें हैं। यह बात क्या है? यही जमीन पर से ग्यानी मालिकी का अन्त कर देना।¹ इस आंदोलन को वे छूते तक नहीं हैं।

इसलिए जमीन पर से धैयत्तिक अधिकार उठा देने के प्रश्न को हम करने के लिए सबसे पहला आवश्यकता इस बात की है कि इस

¹ सर्व साम्प्रदायी तो सदा इस पर चार देते रहें। यह टाल्टस्टाय का धर्म है। पिछले उदाहरणों से उनका यह बात गलत हो गई है।

अपना पेट पाल रहे हैं, इस बात की जरूरत नहीं कि वे अपने मजूर सभ्य बना लें और हड़तालें करें और बच्चों की तरह सड़कों पर जुलूम निकालें। उनके लिए तो सिर्फ एक बात की जरूरत है, और वह यह कि वे अपने उपाया की रोज करें, जो उन्हें कारखाना की इस गुलामी से मुक्त करे और जमान के ऊपर उन्हें अधिकार दिना सकें। उनके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट है, जमींदारों द्वारा जमीन पर अनुचित अधिकार करलना। जमींदार कभी जमीन पर शुद्ध काम नहीं करते, पर जमीन पर अधिकार जमाये बैठे हैं। यही एक बात है जिसके लिए मजूरों को अपने शासकों से प्रथना करनी चाहिए और अपनी मांग पेश करना चाहिए। उसमें जरा भी डरने की बात नहीं है। जमीन उतकी है, अतः उस मांगना अपने निश्चित और न्यायोचित अधिकार को वापस मांगना होगा। जमीन के ऊपर रहना, और उस पर मेहनत करके अपना पेट भरना प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक अधिकार है। इसके लिए किसी में आशा मांगने की कोई जरूरत नहीं।

(४)

जमीन पर से खानगी मालिकी का अन्त कर देना अब बहुत जरूरी हो गया है। क्योंकि जमींदारों के अन्याय, स्वैच्छाचारिता और अत्याचार की अब हद्द हो गई है। पर प्रश्न केवल यही है कि इसका अन्त हो किस प्रकार? रूस तथा अन्य सभी देशों में गुलामी की प्रथा का अन्त सरकार की आज्ञा से किया गया था और ऐसा जान पड़ता है कि भूमि का किसी एक व्यक्ति अधिना समाज की सम्पत्ति मानने की प्रथा का भी अन्त इसी प्रकार सरकार का धोरण जारी की गई आज्ञाओं से हो सकता है। परन्तु सरकारें प्रायः जमीन आपायें बहुत कम दिया करती हैं।

सभी सरकारें इस ही आदमियों की बनी हुई हैं, जो दूसरों की कमान पर गुलद्वार डकाना खोलते हैं; और दूसरी बातों की अपेक्षा जमींदारी की प्रथा में जमे जीवन की सम्भावना बहुत कम है। केवल

शासक और जमींदार-समान के ही लोग इस प्रथा का अन्त करने का विरोध न करेंगे, बल्कि वे लोग भी जो सरकारी कमचारी अथवा जमींदार न होत हुए भी धनिक-समान तथा ऐसे सरकारी कमचारियों, शिल्पकारों, वैज्ञानिकों और व्यापारियों के पास नौकर हैं। वे यह समझकर इसका अन्त करने में विरोध करेंगे कि उनके ऐशो चाराम का सारा दारोमदार इस जमींदारी के ऊपर है। वे सदैव उसका समर्थन करते हैं अथवा और सभी पक्षी बातों की आलोचना करते हैं, जा इससे कम महत्व की हैं, पर जमींदारी के प्रश्न का कभी छूट तक नहीं हैं।

अधिकांश सफेदपोश लोग, अगर जान बूझकर, नहीं ता अज्ञान से ही, यह समझते हैं कि उनकी अच्छी स्थिति का कारण जमींदारी ही है।

यही कारण है कि राष्ट्रीय महासभाएँ (पार्लमेंट) लोगों को यह दिखलाने भर के लिए कि वे जनता की शुभ चिन्तक हैं, और वे जो कुछ भी करती हैं उसकी भलाइ के खयाल से ही करती हैं, ऐसे अनेक प्रस्तावों पर वाद विवाद करता है और उन पर अमल करना भी आरम्भ कर देती हैं, जिनसे वे बतलाता है, लोगों की दशा सुधरेगी। पर एक बात को वे सय बिलकुल छोड़ देती हैं, जिसकी लोगों का सबसे अधिक आवश्यकता है और निम्नमे लोगों की दशा का वास्तविक सुधार हो सकता है और वे एक उन्नत राष्ट्र बन सकत हैं। यह बात क्या है? यही जमीन पर से ग्वानगी मालिकी का अन्त कर देना।^१ इस आंदोलन को ध छूतो तक नहीं हैं।

इसलिए जमीन पर से वैयक्तिक अधिकार उठा देने के प्रश्न को हल करने के लिए सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि इस

^१ सच्चे मार्क्सवादी तो सदा इस पर जार दत रहे। यह टास्त्वाय का भ्रम है। पिछले उदाहरणों से उनकी यह बात गलत हो गई है।

विषय में लोगों ने जो खामोशी अख्तियार कर रखी है, उसका अंत कर दिया जाय। यह खामोशी उन देशों में अख्तियार की जाती है, जहाँ पर बहुत कुछ शक्ति पालमण्टों के हाथ में है। फिर रूस में तो सारी शक्ति बादशाह जार के हाथ में है, अतः यहाँ जमींदारों का अन्त करने के लिए सरकारी आना और भाँकना सम्भव है। पर रूस में भी नाम मान के लिए जार के हाथ में शक्ति है। वास्तव में यह शक्ति केवल दैव के कारण उन सैकड़ों—हजारों लोगों के हाथों में है, जो जार के सम्बन्धी और साथी हैं और जो उससे जबरदस्ती अपनी सारी मनचाही बातें करा लेते हैं। इन सभी आदमियों के पास हजारों बीघा जमीन है। इसलिये वे जार को, यदि वह ऐसा करना चाहें तो भी जमींदारों के पजे से जमान को निकालन न देंगे। जिस समय जार ने किसानों को स्वतंत्र किया था, उस समय उन्हें अपने अपने गुलामों को आजाद कर देने के लिए अपने निकटस्थ लोगों पर जोर देने में बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। पर यह फिर भी इम्प्लिय हो सका कि असल चीज जमीन तो जमींदारों के हाथ में ही बनी रही। लेकिन अगर वे जमीन पर से अपना अधिकार उठा लें तो जार के सम्बन्धियों तथा मित्रों का यह निश्चय है कि जिस प्रकार का जीवन वे इस समय बिता रहे हैं और बहुत समय से जिसके वे आदी हो रहे हैं, उसकी जो कुछ भी आशा रह गई है, वह भी हाथ से जाती रहगी।

इसलिये इस बात की आशा करना व्यर्थ है कि सत्तार की सरकारें विशेष कर हमारी सरकार, जमान को जमींदारों के पजे से निकाल कर प्रजा के हाथ में दे दगी।

बल प्रयोग से भी जमींदारों से जमान का छीन लेना असम्भव है, क्योंकि शक्ति हमेशा उन लोगों के हाथ में रही है और रहगी,

१ अथवा यहाँ पुरानी पढ़ गई है और काल के गत में मिलीन हो गई है।

जिन्होंने जमीन का पहले से ही अपने अधिकार में कर लिया है।

साम्यवादियों की रीति के अनुसार—बतक जमीन वापस नहीं मिल जाती, तब तक टहरे रहना—अर्थात् भविष्य में अधिक की आशा से अपनी दरग और भी खराब बना देने के लिए तैयार हो जाना निरी मूर्खता है। क्योंकि प्रत्येक विचारवान् पुरुष इस बात का जानता है कि यह तरीका श्रम-जीवियों को आनाद करने के बदले उन्हें पूजा पतियों का और भी अधिक गुलाम बना देता है और उन्हें ऐसा कर देता है कि भविष्य में वे उन मैनचरों की गुलामी करें, जो नई-नई संस्थाएँ खोलकर उनके सम्बालक बनेंगे।

किमी भी प्रतिनिधि सरकार स अथवा, जैसा कि रूस के किसानों ने दो राजाओं के राज्य-काल में किया है, तब स इस बात की आशा करना और भा अधिक मूर्खता होगा कि वे जमान को जमींदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनान की इस प्रथा का अन्त कर देंगे। क्योंकि जार के सम्बन्धियों तथा स्वयं जार के पास भी बहुत बड़े-बड़े इलाके हैं, और यद्यपि प्रकट में उनका यह कहना है कि वे किसानों के हितचिन्तक हैं, तथापि जमीन एक ऐसा चीज है जिसकी उनको परमाश्रयकता है अतः वे उसे कभी न छोड़ेंगे। क्योंकि यह बात वे भली प्रकार जानते हैं कि यदि वे जमीन के मालिक न रहें तो उन्हें अपनी इन्त-आराम की चिन्ता में, जो कि वे दूसरों की गाढ़ा कमाई का उपभोग करके बिता रहे हैं, हाथ धोना पड़ेगा।

ता फिर मजूर लोग जिस अत्याचार का शिकार बन रहे हैं, उसमें अपने आपको मुक्त करने के लिए उन्हें किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए ?

(५)

पहले तो ऐसा जान पड़ता है कि इसका कोई उपाय ही नहीं है, मजूर लोग गुलामी की जजारों में इस तरह जकड़े हुए हैं कि उनका स्वतन्त्र होना अब संभव ही नहीं। परन्तु यह भ्रम है। मजूरों को

अपनी मुक्ति का उपाय खोजने के लिए पहले अपने अत्याचारों का कारण खोजना चाहिए। और जब वह ऐसा करेगा तब वह दरेंग कि खून-खत्थर करने व साम्यवादियों के बतलाये मार्ग पर चलन तथा सरकार से सहायता प्राप्त करने की ब्यर्थ आशाएँ रखने के अतिरिक्त अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के ऐसे साधन उनको प्राप्त हैं, जिनमें कोई कभी बाधक नहीं हो सकता। और ये साधन सदैव से उनका हाथ में रहे हैं, और आग भी रहेंगे।

वास्तव में मजदूरों की इस दुःखपूर्ण और शोचनीय अवस्था का केवल एक ही कारण है—यही कि जिन जमीन का मजदूरों को जरूरत है, वह जमींदारों के अधिकार में है। परन्तु जमादार मला इस जमीन को अपने अधिकार में किस प्रकार रख सकते हैं ?

पहले तो इस तरह कि, जिस समय मजदूरों की ओर से इस जमीन को अपने अधिकार में लेने का प्रयत्न किया जायगा, उस समय उनके इस काय का विरोध करने के लिए फौजें भेजी जायगी। वे जमीन पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करने वालों को मारकर भगा देंगी और जरूरत पड़ने पर उन्हें यमलोक तक पहुँचा देने में कोई कसर बाकी न रखेंगी। इस तरह वे फिर जमींदारों का जमीन सौंप देंगी। परन्तु जरा सोचो तो, इन सेनाओं में सैनिक कहाँ से आते हैं ? सनाओं के सैनिक, धर्मजाविया, तुम्हीं तो हो। धर्मजीवियों, तुम्हीं तो सैनिक बन कर और सना के अधिकारियों की आज्ञा का पालन करते हुए जमींदारों के उस चीज का मालिक बनने में सहायक हात हो, जो वास्तव में उनकी नहीं सर्व-स्वाधारण की और इसलिए तुम्हारी भी संपत्ति है। पर तुम सिर्फ यही नहीं करते। तुम उनकी (जमींदारों की) इस जमीन पर काम करके और उस लगान पर लेकर उनकी और भी महापता करते हो। धर्मजीवियों ! तुम्हें चाहिए कि तुम ये सब बातें छोड़ दो। फिर तुम दामोदर कि जमींदारों की जमीन को अपने अधिकार में रखना ब्यर्थ ही नहीं बरन् असंभव हो जायगा और यह जमीन सार्वजनिक

सपनि हो जायगी। परन्तु सम्भव है, पन्नी दशा में जमींदार मजूरों के स्थान में यन्त्रा स काम लेने लगे और खेती करने के स्थान में पशु-पालन, उनकी सन्तान बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने तथा जंगलों की रक्षा और वृद्धि आदि का काम आरम्भ कर दें। पर व कुछ भी करें, तुम निश्चय पूरक जानो कि, धर्मजीविया, तुम्हारे बिना उनके लिए अपना काम चलाना असम्भव हो जायगा और तब एक एक करके उन सबको मजूर होकर अपनी अपनी जमीन छोड़नी पड़ेगी।

इस प्रकार धर्मजीवियो ! इस गुलामा और दारिद्र्य स मुक्त होने का एक मात्र साधन यही है कि तुम पहले यह समझ लो कि जमीन पर किस एक व्यक्ति अथवा समाज विशेष का अधिकार कर लेना एक भारी अपराध है। जब तुम यह समझ लो, तो दूसरा काम यह है कि तुम कभी फौजों में नौकरी न करो। क्योंकि फौजों के बल पर ही तो ये लोग किसानों और मजूरों से जमीनें छीनते हैं। एक रात और है। जमींदारों की जमीन पर काम करना, एवं उस लगान पर लेना भी उनकी जमीन का उन्हें मालिक बने रहने देने में सहायता करना है। इमोलिण उनकी जमीनों पर काम भी न करो, न उन्हें किराये पर ही लो।

(१)

हाग कहते “परन्तु यह उपाय तो सभी कारगर हागा, जब दुनिया भर व सभी मजूर यह निश्चय कर लें कि फौज में नौकरी नहीं की जाय और न जमींदारों की जमीन पर काम किया जाय और न उस जमीन को लगान पर लिया जाय। और सारे समाज के धर्मजीवी एकदम काम करना बन्द कर दें। परन्तु ऐसी बात न तो है ही और न हो सकती है। अगर थोड़ा स धर्मजीवी इन सब बातों पर रानी भी हा जाय, तो बाकी धर्मजीवी, जो प्राय दूसरे देशों के धर्मजीवी होंगे, इसका आशयकता को न समझेंगे। और इसन्विण परिस्थिति में काह विशेष बर्क न होगा—जमीनें ता ज्यों-की-र्यों जमींदारों क अधिकार में बनी रहेगी। पर यह होगा कि इन हड़ताल करने वाले मजूरों व दूसरों का

भला होना तो डीक वे उलटी अपनी ही हानि कर लेंगे।”

यह एवरान विलकुल सही होता, अगर मैं उन्हें हड़ताल कर (काम करने में इन्कार कर देने) को कहता होता, लेकिन मैं हड़ताल की बात नहीं करता। मैं तो यह कहता हूँ कि धमजीवियों को चाहिए कि वे सेनाओं में भरती होना बन्द कर दें, जो हमारे भाइयों पर आक्रमण करके उन्हें अपने स्वर्गों सवञ्चित कर देती है। मैं तो यह कहता हूँ कि वे जमींदारों की जमीन पर काम करने या उसे लगान पर लेने से इन्कार कर दें। क्यों ? इसलिए नहीं कि इससे धमजीवियों को केवल हानि है और उससे उनकी पराधीनता बढ़ जाती है, बल्कि इसलिए कि इन कामों में किसी प्रकार का कोई भाग लेना स्वयं एक बहुत बड़ा पाप है। प्रत्येक मनुष्य को इस पाप से उसी प्रकार बचना चाहिए, जिस प्रकार हत्या करने, चोरी करने, डाका डालना इत्यादि कामों के करने से बचना उनमें किसी भी प्रकार का कोई हिस्सा लेने से बचना उसका परम धर्म है। यदि धमजीवी लोग इस बात पर जरा भी विचार करेंगे कि कुछ भी परिश्रम न करनेवाले हम भद्र पुरुषों की जमीन पर अधिकार बनाये रखने में महायत्ना करना कहां तक उचित है, तो वे निःसन्देह देखेंगे कि जमीन पर किसी व्यक्ति अथवा समाज विशेष का एकात्म अधिकार होना विलकुल न्याय विरुद्ध बात है और इसलिए उस प्रथा को बनाय रखना एक महापाप है। इस पाप के कारण सहस्रों मनुष्य, शृद्ध पुरुष एवं छोटे छोटे वर्गों को दुःख और शारीरिक में जीवन बिताना पड़ता है। इसी पाप के कारण उन्हें भर-पेट भोजन नहीं मिलता यही नहीं बल्कि आवश्यकता तथा अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करना पड़ता है। इस पृथित जमींदारी प्रथा के कारण हजारों स्त्री पुरुषों को पाकेकगी और अति परिश्रम के कारण अकाल ही काल के माल में पहुंचना पड़ता है।

यदि जमींदारों-द्वारा जमीन का अपने एकान्त अधिकार में बनाये रखने का यही परिणाम हो—और यह बात अब प्रायः सभी पर विदित

हो गई है कि इसका परिणाम एसा ही होता है—तो यह बात भी स्पष्ट है कि जमींदारों के जमीन पर अधिकार रखने और इस अधिकार का समर्थन करने के काम में किसी प्रकार भी कोई हिस्सा लेना एक बहुत बड़ा पाप है, निम्नमे प्रत्येक मनुष्य को दूर रहना चाहिए। करोड़ों मनुष्य सूदगोरी, आगारागर्दी, निबलों को सताने, उनपर आक्रमण करने, चोरी करने, हरया करने तथा ऐसे ही दूसरे कामों को स्वभावतः पाप-कर्म समझते हैं और ऐसे कामों से सदैव दूर रहते हैं। ठीक ऐसा ही आचरण श्रमजीवियों को भौमिक संपत्ति के सम्बन्ध में करना चाहिए। वे स्वयं ऐसा सम्पत्ति के अनौचित्य को देखते हैं और उसे बहुत ही कुचित पथ निन्द्यतापूर्ण काम समझते हैं। तो फिर क्या कारण है, जो वे उसमें केवल हिस्सा ही नहीं लेते बल्कि उसका समर्थन भी करते हैं ?

(•)

इस प्रकार मैं जिस बात की सलाह देता हूँ, वह हृदताल नहीं है। मैं तो भौमिक संपत्ति की रक्षा और समर्थन को एक अपराध और महा पाप बता रहा हूँ और स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि हम सब ऐसे पाप से बचना एसा करने से अपना हाथ रोक लें—उसमें सहायक होने से बचें। यह सच है कि इस प्रकार किसी काम को धुरा या पाप समझ कर उस धाड़न के लिये सब लोग जल्दी तैयार नहीं होते, जैसा कि हृदतालों में हुआ करता है। और इस कारण ऐसे कामों में उस सफलता की भी आशा नहीं की जा सकती है। परन्तु इस सिद्धान्त के आधार पर जितनी स्थायी और दृढ़ एकता स्थापित हो जाती है, वह हृदताल से बढ़ापि नहीं हो सकती। हृदताल के समय होने वाली कृत्रिम एकता हृदताल का उद्देश्य सिद्ध हो जान पर फौरन भंग हो जाती है। पर जो एकता किसी कार्य-क्रम का स्वीकार कर लेने पर अथवा एक ही कार का विश्वास रखने के कारण होती है, वह दिन पर दिन और भी अधिक बढ़ती जाती है और अधिकाधिक लोगों का अपनी ओर खींचती जाती है और जब श्रमजीवी हृदताल की भावनास नहीं, बल्कि भौमिक

संपत्ति को पाप-मूलक सम्भ, उसमें किसी प्रकार कोई हिस्सा लेने अपना हाथ खींच लेंगे, तो उनमें भी वही चिरस्थायी एकता होगी बहुत सम्भव है, जमीन की खानगी मालिकी की रक्षा समर्थन में किन्हीं प्रकार का हिस्सा लेना अनुचित है, इस बात का समझने हुए भी उनसे बहुत थोड़े आदमी जमींदारों की जमीन पर काम करना बन्द कर और उसे लगान पर भी न लें। परन्तु तो भी, चू कि वे ऐसा किस स्थानीय और अस्थायी इकारनामों के कारण नहीं, बल्कि यह समझकर करेंगे कि कौन-सी बात उचित है और कौन-सी अनुचित है और किसी उचित बात को तो हमेशा सभी मनुष्य मानने को तैयार रहते हैं और भूमि पर वैयक्तिक अधिकार बनाये रखना तो सरासर एक अनुचित बात है ही, अतः जवाबों यह बात लोगों पर प्रकट होती जायगा क्योंकि ऐसे लोगों की संख्या आप-से आप बढ़ती जायगी।

पहले से ही ठीक ठीक यह बतला देना सम्भव है कि श्रमजीवियों के यह समझ जाने पर कि भौतिक संपत्ति के लक्ष्य की रक्षा करने में किसी प्रकार का हिस्सा लेना बहुत बड़ा पाप है, समाज में क्या-क्या परिवर्तन हो जायगे। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे परिवर्तनों का होना अनिवाय है। इस ज्ञान का महत्त्व नितना भा अधिक् हो उतना ही अधिक उसका प्रचार भी होगा। सम्भव है, ऐसे परिवर्तनों का परिणाम यह हो कि कुछ श्रमजीवी जमींदारों के लिए काम करना या उनकी जमीन को किराये (लगान) पर लगा बन्द कर दें और इस प्रकार जय जमींदारों की जमीन पर अपना अधिकार बनाये रखने में कोई लाभ न दिखलाइ पड़ेगा तो वे या तो श्रमजीवियों के साथ अपना समझौता कर लेंगे, जो उन श्रमजीवियों के लिए हितकर होगा या जमीन को रिक्तकुल ही छोड़ देंगे। यह भी सम्भव है कि जो श्रमजीवी मजदूरों में भरता हो गये हैं वे यह समझ जान पर कि जमीन पर वैयक्तिक अधिकार होना बुरा है, अपने प्राणीय श्रमजीवी भाइयों पर आक्रमण करने और उन्हें पद दलित करने से हन्वार कर

है, जिसका परिणाम शायद यह हो कि सरकार जमींदारों की जमीन ही रक्षा करने में अममय हो जाय और इस तरह जमीन जमींदारों के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में चली जाय और उसके ऊपर किसी व्यक्ति अथवा समाज विशेष का अधिकार न रह जाय ।

अन्त में, यह भी सम्भव है कि जिस समय सरकार को यह विश्वास हो जाय कि जमीन पर से वैयक्तिक अधिकार का उठ जाना अनिवार्य और स्पष्ट हो गया है, उस समय वह श्रमजीवियों की इस विषय की सरकारी आजा का रूप देकर कानून द्वारा भूमि पर से वैयक्तिक अधिकार की बात उठा दे ।

यह बता देना बहुत मुश्किल है कि श्रमजीवियों को इस बात का ज्ञान हो जाने पर कि जमीन पर किमी का व्यक्तिगत अधिकार होना अब उसमें सहायक होना भी एक अनुचित बात है, जमीन पर अधिकार रखने के सम्बन्ध में क्या-क्या परिवर्तन होना जरूरी और सम्भव है । सम्भव है बहुत स परिवर्तन हों । पर एक बात बिलकुल निश्चय है—वह यह कि कोई मनुष्य इस मयघ में मच्चे दिल से और ईश्वर पर विश्वास करके कुछ काय करेगा, ता निश्चय ही उसके प्रयत्न व्यर्थ न होंग ।

जिस समय लोगों क सामने कोई ऐसा काम करने का बात आ जाती है, जिसका बहु-मत्प्यक जन-समाज ने समथक नहीं किया है, तो वे प्राय यह कहने लगते हैं, "इन तनाम लोगों क मुकाबल में अकेला क्या कर सकता हूँ ?" ऐसे लोग यह सममते हैं कि किमी कार्य की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उस सभी अथवा कम-से-कम ज्यादातर लोग करने लग जायें, पर यह धारणा सरासर भ्रमपूर्ण है । मच ता यह है कि बहुत स आदमियों की जरूरत तो एक बुरे काम के लिए भल ही हो, एक अद् काम के लिए ता एक ही आदमी काफी है; क्योंकि वो मनुष्य अरुदा काम करता है, ईश्वर हमारा हमके साथ रहता है । और जिस मनुष्य के साथ ईश्वर है, उसके साथ, अभी

पेमा काम न करें जो उनके दूसरे भाइयों के लिए हानिकारक हो।

यदि इस समय धर्मजीवी लोग जमींदारों के यहाँ उनका काम करते हैं और उनकी जमीन किराये (लगान) पर लेते हैं, तो इन सब का कारण केवल यही है कि अभी उन सब लोगों को इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है कि असुख कम पापकर्म है। और न सभी लोग यह समझते हैं कि हमसब वे अपना तथा अपने भाइयों का बहुत बड़ा अनिष्ट करते हैं। लोग नितना ही अधिक भौमिक सम्पत्ति में भाग लेने के महत्त्व को समझेंगे और नितनी ही अच्छी तरह वे इस समझ जायगे, उतनी ही शीघ्रता और सुगमता एवं हदता के साथ परिश्रम करनेवालों के ऊपर स परिश्रम न करने वालों का दायर उठ जायगा।

(६)

धर्मजीवियों की दशा सुधारने का एक-मात्र उपाय यह है कि जमीन को जमींदारों के अनुचित अधिकार से मुक्त कर दिया जाय और यह ईश्वर की आज्ञा क अनुकूल है। जमींदारों की जमीन पर काम न करने और उनके किराये (लगान) पर न लेने से भी जमीन की मुक्ति हो सकती है। इस तरह धर्मजीवी समा में सम्मिलित होने से इन्कार भी कर सकते हैं जब कि यह धर्मजीवियों के विरुद्ध काम में लाई जा रही हो। परन्तु तुम धर्मजीवियों के लिए इतना ही जान लेना काफी न होगा कि तुम्हारे हित के लिए जमीन का जमींदारा के पत्रों से निकल जाना आवश्यक है। केवल जमींदारों की जमीन पर काम करना और उसे किराये (लगान) पर लेना बन्द कर देने से भी काम न चलेगा। मुझे तो यह भी जान लेना जरूरी है कि निम्न समय जमीन जमींदारों के पत्रों से निकल जायगी उस समय तुम उसका प्रबंध किस प्रकार करोगे ? आपस में धर्मजीवियों में उसे कैसे बाँटोगे ?

हममें से बहुतों का यह विचार है कि जो खागकोई काम नहीं करते, उनके हाथ से पहले जमीन निकाल लेने भर की देर है कि हमके बाद सारी बातें ठीक हो जायगी। पर बात ऐसी नहीं है। यह कहना तो

बहुत ही आसान है कि जमीन आलसी और काम न करने वालों के हाथ से निकाल कर काम करने वालों के हाथ में दे दी जाय। परन्तु यह सारी कार्रवाही किस प्रकार की जाय कि न्याय का उल्लंघन न हो और धनिकों को फिर से इस बात का श्रयसर भी न मिले कि वे बड़े बड़े इलाके खरीद कर उनके मालिक बन जाय और इस प्रकार काम करने वालों (श्रमोपजीवियों) को फिर अपने दास बना लें। तुममें से बहुत लोग अभी समझत हैं, कि प्रत्येक धर्मवीर अथवा समाज का अपनी इच्छानुसार जहा कहीं वे चाहें, एक स्थान से दूसरे स्थान पर चम जाने और जमीन जोतने बोनने का अधिकार होना चाहिये, जैसा कि पुराने जमाने में होता था और अब भी कहीं कहीं होता है। पर यह वहाँ सम्भव है जहा पर आबादी कम हो, और जमीन इफरात और एक ही किस्म की हो। पर जहाँ पर आबादी इतनी ज्यादा है कि उसका उम जमीन से भरण-पोषण भी ठीक तौर से नहीं हा सकता और जहा की जमीन कई किस्म की है, वहाँ यह जरूरी है कि लोगों में उमने दूसरी तरह बागन के उपायों की सोच की जाय। यदि इसका बग्यारा जन-संख्या के अनुमार किया जायगा तो जमीन उन लोगों के भी हिस्से में चली जायगी, जो यह भी नहीं जानत कि वह किम प्रकार जोती-बोह जाती है और फिर ये काम न करने वाले लोग उस या तो दूसरों को किराये पर उठा देंगे या धनवानों के हाथ उस बेच देंगे। नतीजा क्या होगा ? फिर ऐम ब्यक्तियों की संख्या बढ़ जायगा निरंक पाम हजारों बीघा जमीन है, पर जो उस पर कुछ भी काम नहीं करत। यह भी प्ररन उठ सकता है कि काम न करने वाले लोगों को जमीन बेचने और उसे किराये पर उठा देने में क्यों न राफ दिया जाय ? परन्तु ऐमी दशा में यह जमीन बेकार पड़ी रह जायगी, जो एम लोगों की सम्पत्ति है जो या तो काम करना नहीं चाहत या काम कर ही नहीं सकते। इसक अतिरिक्त, यदि जमीन का बग्यारा जन-संख्या के हिसाब से किया जाय तो प्ररन यह उठता है कि एक ही किस्म की जमीन सब

के हिस्से में कैसे डाली जाय ? कुछ जमीन तो खूब उपजाऊ और कुछ ककरोली, पथरीली, ऊसर, रेतीली और दल-दलदार है। कस्बा में ऐसी उपजाऊ जमीन है जिसमें फी एकड़ मूख आमदनी होती है पर कुछ दूसरे स्थानों में ऐसी जमीन मिलेगी जिनसे कोई भी आमदनी नहीं होती। तो फिर जमीन का विभाजन (बटवारा) किस प्रकार किया जाय कि वह काम न करने वालों के हिस्से में न पड़े और किसी का हिस्सा भी न मारा जाय और किसी प्रकार का विरोध, लड़ाई मगवा और पिसाद भी पैदा न हो ? बहुत दिनों से लोग इन बातों पर विचार कर रहे हैं और इन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं, और इस सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी युक्तियाँ दूढ़कर निकाली गई हैं कि जिनसे, श्रमजीवियों में जमीन का समुचित बटवारा किया जा सके।

समान-संगठन सम्बन्धी कुछ योजनायें हैं जिन्हें मार्क्सवादी समझा जाता है। इन योजनाओं में जमीन सावजनिक सम्पत्ति मानी जाती है, और सभी लोग सम्मिलित रूप से उसे जोतते-थोते हैं। पर इनके अतिरिक्त मुझे नीचे लिखी कुछ योजनाओं का पता है —

सबसे पहली योजना जो मैं यताऊंगा विलियम थोगिलघी नामक एक स्कॉटलैण्ड निवासी सज्जन की बनाई हुई है। थोगिलघी अठारहवीं शताब्दी के पुरुष बतलाये जाते हैं। महाशय थोगिलघी का कथन है कि चूंकि प्रत्येक मनुष्य जमीन पर पैदा होता है इसलिए उम जमीन पर रहने और उसकी पैदावार स चपना भरण-पोषण करने का उन्ने पूरा अधिकार है। इसलिए थोड़े से मनुष्य हम जमीन को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाकर उसके इस अधिकार में किसी प्रकार की कीड़े बाधा उपस्थित नहीं कर सकते। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उसकी जमीन अपने कर्ज में रखने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए जो उन्के हिस्से की है। अगर कोई अपने हिस्से से अधिक जमीन अपने अधिकार में ले लेता है और उन हिस्सों से फायदा उठाता है, जिनके सम्बन्ध में वे लोग जो वास्तव में उसके मालिक हैं, अपने कोई दावा

पेशा नहीं कर रहे हैं, तो ऐसे व्यक्ति को चाहिए कि वह इसके लिए सरकार का विशेष कर दिया करे।

इसके कुछ वर्ष बाद ब्रिटेन निवासी एक दूसरे सज्जन ने जमीन सम्बन्धी इस समस्या को इस प्रकार हल किया "सारी जमीन जिलों की जन-संख्या में सामूहिक रीति से बांट दी जाय। और जिस प्रकार जिले की जनता चाहेगी उसका उपभोग कर सकती है" इस प्रकार अलग अलग व्यक्तियों द्वारा भूमि को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति बनाने की प्रथा का विलकुल अन्त ही कर दिया गया था।

महाराय स्पेन्स ने भी इसी सम्बन्ध में अपने विचार एक प्रसंग पर सन् १७८८ में प्रकट किये थे। प्रसंग यों है।

"एक दिन मैं अकेला जंगल में अक्सरोट बीन रहा था कि एकाएक उस जंगल के अपसर (फोरस्टर) ने झाड़ी के बीच से मेरी आर झाक कर मुझसे पूछा, "तुम यहाँ क्या कर रहे हो?" मैंने उत्तर दिया, "अल रोट बीन रहा हूँ।"

उसने कहा,— "क्या अक्सरोट बीन रह हो ? यह कहने का साहस तुम्हें कैसे हुआ ?"

मैंने कहा,— 'यताथा, क्यों न हा ? अगर कोई गिलहरी या बन्दर पेना करता होता तो क्या आप उससे भी पेना ही प्रश्न करते ? क्या आप मुझे इन जानवरों से भी कम समझत हैं, था मेरा अधिकार इनमे भी कम है ?' मैंने भी जरा कड़ककर पूछा "यान्विर तुम हाउ कौन हो जा मेरे काम में इस तरह बाधा पहुँचा रहे हो ?"

उसने कहा— "मैं यह सब तुम्हें उस समय बता दूँगा, जब मैं तुम्हें यहाँ अनधिकार प्रवेश करने के अपराध में गिरफ्तार कर लूँगा।"

मैंने उत्तर दिया— "यशक, लेकिन जरा यह तो बताइए कि यहाँ, जहाँ पर कभी किसी मनुष्य ने न पैर लगाय और न जमीन बोली-बोई, मेरा अपना अनधिकार प्रवेश कैसे कहा जा सकता है ? ये अक्सरोट तो अदृति दृष्टी न अपनी इच्छा से खोगों की भेंट किये हैं, और इनका उप

भोग करने का अधिकार तो मनुष्य और पशु सभा रखते हैं। वृत्तों सर्व साधारण की सम्पत्ति है।”

उमने कहा—“मैं तुमसे यह कहता हूँ कि यह जंगल सब-साधारण की सम्पत्ति नहीं है। इसके मालिक पोर्टलैंड के ट्यूक हैं।”

मैंने कहा—“बड़ी अच्छी बात है। ट्यूक साहब जुग जुग जीयें। पर प्रकृति उन्हें भी उतना ही जानती है जितनी कि मुझे। और प्रकृति देवी के भयङ्कर में तो यह नियम है कि पहले आओ और पहले खाओ। इसलिए अगर साहब कुछ अखरोट लेना चाहें तो शीघ्रता करें।”

अंत में महाशय स्पेन्स ने गरजकर कहा कि, अगर मुझे ऐसे देश की रक्षा करने का हुक्म दिया जाय कि जिसमें मैं एक अखरोट भी नहीं तोड़ सकता, तो मैं यह कहकर अपने हथियार फेंक दूंगा कि, “इसके लिए पोर्टलैंड के ट्यूक जैसे व्यक्तियों को ही लड़न दो, जा दश के मालिक हान का दावा करते हैं।”

इसी प्रकार विवेक-युग (The Age of Reason) और ‘मनुष्य के अधिकार’ (The Rights of Man) नामक ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक टामस पन ने भी इस समस्या को हल किया है। उनके हल की विशेषता यह थी कि भूमि का तो उन्होंने सामाजिक सम्पत्ति माना और भिन्न भिन्न जमींदारों द्वारा भूमि पर स्थापित किये अधिकार का नष्ट करने के लिए उत्तराधिकार की प्रथा को मिटा देने का प्रस्ताव किया था। फलतः जा जमीन अभी तक किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति रही है उसका मालिक बन जाने पर सामाजिक सम्पत्ति हो जाय।

टामस पन के बाद, अठारह शताब्दी में पैट्रिक एडवर्ड टयने ने इस विषय में बहुत-कुछ विचार किया और लिखा है। मि० टयने का सिद्धांत यह था कि जमीन का मूल्य दो प्रकार से बढ़ता है—स्वयं जमीन की उर्वरा शक्ति से और दूसरे उस पर किये गए परिश्रम से। जमीन का जो कुछ भी मूल्य उस पर किये गए परिश्रम के कारण बढ़ जाता है, वह किसी मनुष्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो सकती है। पर अपनी उर्वरा-

शक्ति के कारण उमका जो कुछ भी मूल्य होता है, वह तो समस्त राष्ट्र की सम्पत्ति है। जैसा कि हो रहा है वह कभी किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए।

जापान की लैण्ड रिक्लेमिङ्ग सोसाइटी ने भी ऐसी ही एक योजना तैयार की है। याजना सचेप में यों है—प्रत्येक को अपने हिस्से की जमीन पर इस शत पर कारिन रहन का अधिकार है कि वह उसके लिए एक निश्चित कर (टैक्स) दिया करे और इमलिए जिस व्यक्ति के पास अपने हिस्से से ज्यादा जमीन है, उसमें वह अपने हिस्से की जमीन माग सकता है। परन्तु मेरी राय में तो समझे अधिक न्याय और व्यवहार्य योजना हेनरी जाज की है जो 'मिगल टैक्स सिस्टम' क नाम से प्रसिद्ध है।

हेनरी जाज की तैयार की गई योजना मुझे तो सबसे अधिक न्याय युक्त लाभ प्रद और सबसे अधिक व्यवहार्य दिग्गद् दती है। सचेप में उसका चरण इस प्रकार किया जा सकता है। मान लीजिए कि किसी स्थान में सारी जमीन क मालिक दो जमींदार हैं। इनमें से एक बहुत धनवान और दूर दूर में रहने वाला है, और दूसरा इतना धनवान तो नहीं, पर अपनी जमीन आप जोतता-बोता है—और जगभग सौ किमान है उनके पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है। इसके अनिरीक, उसी स्थान में एक बहुत से मजदूर पेरा आदमी शिल्पकार, व्यापारी लोग (मौदागर) और सरकारी कमचारी रहत है, तिनके पास कोई जमीन नहीं है। मान लीजिए, इस स्थान के सब निवासी इस निर्णय पर पहुंचत है कि कुल जमीन सारजनिक सम्पत्ति है। तब व इस विश्वास के अनुमार उस जमीन का बटवारा कैसे करें ?

सभी पेम खागों से, तिनके पास जमान है, उस कुल जमीन का खे खना और प्रत्येक मनुष्य को अपनी रचि क अनुमार जमीन का टप भाग करन का इजाजत द दना ता असम्भव है। क्योंकि एक ही किस्म की जमीन क लिए बहुत से उम्मीदवार रहत हो जायग और उनमें पसे

भगड़े पैदा हो जायगे जिनका कभी अन्त ही न होगा। सबके लिए सम्मिलित होकर जमीन का जोतना घोंना, निराना और फसल काटना और तैयार करना और बाद में उसका आपस में बांट लेना भी व्यवहार्य न होगा, क्योंकि कुछ लोगों के पास तो हल, बैल और गादियाँ हैं, दूसरों के पास नहीं हैं। इसके अलावा, कुछ लोगों को जमीन जोतने घोंने का न तो काफी अनुभव है और न खेती का आवश्यक ज्ञान। जन-संख्या के अनुसार एक प्रकार की जमीन को बराबर बराबर हिस्सों में बांटना भी बहुत कठिन होगा। यदि प्रत्येक किस्म की जमीन बहुत से छोटे छोटे हिस्सों में बांट ली जाय, जिससे प्रत्येक मनुष्य को जोतने घोंने और जगल आदि के लिए उत्तम, मध्यम, निकृष्ट सभी प्रकार की जमीन का अलग अलग हिस्सा मिल जाय, तो आवश्यकता से अधिक बहुत से छोटे छोटे हिस्से बढ़ जायगे।

इसके अतिरिक्त, इस प्रकार जमीन का बांटना और भी अधिक भयकर इसलिए होगा कि जो लोग काम करना नहीं चाहते या जो बहुत ज्यादा गरीब हैं, वे अपना लेकर अपनी जमीन धनी जनों के हवाले कर देंगे और फिर बढ़-बढ़ जमींदारों की संख्या बढ़ जायगी। इसलिए इस स्थान के निवासी यह तय करते हैं कि जमीन को उन्हीं लोगों के हाथ में छोड़ दिया जाय जिनके कब्जे में यह है, और यह तय कर लिया जाय कि इस जमीन के प्रदले जमीन के मालिक सार्वजनिक कोष में एक निश्चित रकम दे दिया करें जो उनके कब्जे की जमीन से उस पर कब्जा करने वाले की हाती। पर यह रकम उस गहनत से नहीं लय की जाय जो कि उस जमीन पर की गई है बल्कि उस जमीन की किस्म और स्थिति से आकी जाय और अन्त में इस स्थान के निवासी इस रकम को आपस में बराबर बांट लेने का निश्चय करते हैं।

लेकिन जिन लोगों के कब्जे में जमीन है, उनमें रुपये वसूल करना और प्रत्येक मनुष्य को बराबर बांटना एक बहुत जटिल समस्या है। इससे अतिरिक्त सभी निवासियों को पाठशाला, प्रार्थना-मन्दिर, आग

सुम्नाने के इञ्जन, गोशालाए, सड़कों आदि की मरम्मत कराने इत्यादि सार्वजनिक कामों के लिए रपया देना पड़ता है और यह रपया सार्वजनिक आवश्यकताओं के लिए हमेशा काफी नहीं होता। इसलिये हम स्थान के निवासी जमींदारों से जमान की आमदनी का रपया इकट्ठा करने, उसे सब लोगों में बाट देने और फिर टैक्स के लिए उसे वसूल करने के बदले, यह निश्चय करते हैं कि जमीन से होने वाली सारी आमदनी तहमाल वसूल कर ले और उसे सार्वजनिक आवश्यकताओं में खर्च करे।

इस निर्णय पर पहुँचने के पश्चात् वे निवासी जमींदारों से उनके कब्जे की जमीन के हिस्से से रपया तलब करते हैं और जिन किसानों के पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है उनमें भी रपया तलब करते हैं। परन्तु उन थोड़े से आदिमियों से कोई भी रकम तलब नहीं की जाती जिनके पास कुछ भी जमान नहीं है, किन्तु जमीन से होने वाली आमदनी से जो भी सम्पन्न किसान की गइ है, उनका उपयोग बिना कुछ दिये मुफ्त में करन का उन्हें इजाजत दे दी जाता है।

इसका परिणाम यह होता है कि जो जमींदार अपनी जमीन पर नहीं रहता है और उससे बहुत कम पैदा करता है, उसे हम प्रकार रैकम दत्त हुए जमान पर अपना कर्ना बनाये रखन से कोई लाभ नहीं दिग्याई पड़ता और इसलिये यह उसे छोड़ देता है। पर वह दूसरा जमींदार जो एक थकड़ा किसान है, अपनी जमान क मिष् एक हिस्से का ही धाड़ता है और अपने लिए इतनी जमान बनाये रखता है जिससे वह उसन दरम से ज्यादा पैदा कर सके जो हममें पूर्ण जमीन का इस्तेमाल करन के लिए भागा जाता है।

जिन किसानों के पास जमीन धाड़ी है, जिनके पास काम करन वाले ज्यादा और जमीन कम है तथा जिनके पास जमीन बिल्कुल नहीं है पर जो अपनी जीविदा का उपार्जन जमीन क उपर परिश्रम करके करमा पादते हैं, वे जमींदारों द्वारा छोड़ी गइ इस जमीन को अपने

कच्चे में ले लेते हैं। इस तरह उस स्थान के सभी निवासियों के लिए जमीन पर रहना और उससे अपनी जीविका उपार्जन करना सम्भव हो जाता है, और कुल जमीन उन लोगों के हाथ में चली जाती है या उनके कच्चे में बनी रहती है, जो उस पर काम करना चाहते हैं और जिनमें अधिकाधिक पैदा करने का सामर्थ्य है। साथ ही उस स्थान की सार्वजनिक सस्थाओं में भी उन्नति होती जाती है, क्योंकि इस योजना द्वारा सावजनिक कामों के लिए पहले की अपेक्षा अधिक रकमा मिलता है। और इन सबके अलावा जमीन के सम्बन्ध में यह सारा परिवर्तन बिना किसी खर्च के या रक्तपात के ही हो जायगा, क्योंकि जिन लोगों को खेती करने से कोई लाभ नहीं है वे अपनी इच्छा से ही जमीन को छोड़ देंगे। यही हेनरी जार्ज की योजना (स्कीम) है, जो भिन्न भिन्न रायों, तथा सारे मानव-समान के लिए भी, अनुकूल सिद्ध हुई है।

‘अब मैं सूत्र में अपनी बातों को फिर दुहरा देना चाहता हूँ।

धर्म-जीविया, मैं तुम्हें पहली सलाह यह देता हूँ कि तुम पहले यह समझ लो कि तुम्हें आवश्यकता किम बात की है। व्यर्थ में उस वस्तु के प्राप्ति करने का कष्ट न उठाओ जिसकी तुम्हें आवश्यकता नहीं है। तुम्हें आवश्यकता सिर्फ जमीन का है—जिस पर तुम रह सको और जिससे तुम अपना भरण पोषण कर सको।

दूसरे, मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि इस बात पर तुम खोग अच्छी तरह विचार कर लो कि किन उपायों से तुम जमीन को, जिसकी तुम्हें आवश्यकता है, प्राप्त कर सकत हो। इस तुम रक्त-पात करके नहीं प्राप्त कर सकते—ईश्वर तुम्हें ऐसी श्रेष्ठता से बचावे। अथ प्रदर्शन, हठता अथवा पात्रमेय में अपने प्रतिनिधि भेजकर भी यह काम नहीं हो सकेगा। इसका सरल उपाय है उन कार्यों में भाग लेने से इन्कार कर देना जिन्हें तुम सुरा समझत हो, अर्थात् यह कि तुम्हें सरकारी सेना के सैनिक बनकर और रक्त-पात करके अथवा जमींदारों की

जमीन पर काम करके या उसको लगान पर लेकर जमीन को वैयक्तिक संपत्ति बनाने वाले अनौचित्य का समयन न करना चाहिए।

तीसरे, यह तो सोचो कि जिस समय जमीन जमींदारों के चंगुल से निकलकर स्वतंत्र सार्वजनिक संपत्ति बन जायगी उस समय तुम टसका बटवारा किम प्रकार करोगे ? तुम्हें यह न समझना चाहिए कि जो जमीन जमींदार छोड़ देंगे वह तुम्हारी संपत्ति होगी। किन्तु तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि जमीन का बटवारा न्यायोचित और बिना किसी पक्षपात अथवा द्वेषभाव के सब लोगों में समान रूप से होना जरूरी है। और इसलिए यह आवश्यक है कि मौमिक संपत्ति पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न माना जाय, चाहे वह जमीन एक ही गज क्यों न हो।

सूय की गरमी और वायु के समान जमीन की सब मनुष्यों की सम्मिश्रित संपत्ति मानकर ही, तुम बिना किसी को हानि पहुंचाये न्याय पूर्वक किसी भी नयी या पुरानी योजना के अनुसार, जिसे तुम सब लोग मिलकर सोचो और पसंद करो, जमीन को सब मनुष्यों को बांट सकोगे।

चौथे, और यह खूब ध्यान से सुनने की बात है मैं तुम्हें यह सलाह दूंगा कि जिस वस्तु की तुम्हें आवश्यकता है उसका प्राप्त करने के लिए तुम्हें शर्मकों के साथ कोई लड़ाई झगड़ा या रक्त-पात करने अथवा साम्यवादियों के निर्दोष भाग पर चलने की आवश्यकता नहीं है। सबसे पहले तो तुम्हें स्वयं अपना जीवन उत्तम और सदाशरपूर्ण बनाने की जरूरत है। लोगों का जीवन इमालिए खराब हो रहा है कि वे पुराने जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। यह ख्याल मनुष्य जाति को बेहद हानि पहुंचा रहा है कि उनकी दुरवस्था का कारण उनके भीतर नहीं बल्कि बाहर समार में है। यदि कोई मनुष्य अथवा मनुष्य-समाज यह समझता है कि जिन धराइयों का यह अनुभव कर रहा है उनका मूल बाह्य जगत् में है और फिर इसके अनुसार इन बाह्य बातों क

(४)

एक-मात्र उपाय

All things therefore whatsoever ye would that men should do unto you even so do ye also unto them—for this is the law and the Prophets—

Matt vii 12

अर्थात् जो कुछ तुम चाहते हो कि दूसरे लोगों को तुम्हारे साथ करना चाहिए, वही तुम उनक साथ भी करो क्योंकि कानून और धर्म दोनों की यही आज्ञा है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

(१)

संसार में धर्मजीवियों—मजदूरों की संख्या एक अरब से भी ऊपर है। खान पीने की सारी सामग्री, संसार की वे सारी वस्तुएँ, वे सारी चीजें जिनके ऊपर लोगों की जीविका निर्भर है, और जिनसे लोग अमीर हैं—इन धर्मजीवियों के ही परिश्रम से उत्पन्न होती है। परन्तु इन सबसे वह लाभ नहीं उठा सकता जो इन चीजों को बनाता है। लाभ उठाती हैं सरकार और धनिक समाज। धर्मजीवी बेचारे निरंतर दुःख वारिद्र्य, अज्ञानाधिकार और दाम्भता के बन्धन में ही पड़े रहते हैं और जिन लोगों के लिए वे भोजन और वस्त्र तैयार करते हैं, मकान बनाते हैं तथा अन्य सेवा कार्य करते हैं वे ही उन्हें अनादर और विरहकार की दृष्टि से देखते रहते हैं।

जमीन मजूर के हाथ से निकाल ली जाती है और वह उन लोगों की सम्पत्ति बना दी जाती है, जो उस पर कुछ भी काम नहीं करते, जिसके कारण जमीन से जीविका उपानन करने के लिए उस पर परिश्रम करने वाले मनुष्य को उस जमीन के मालिक के अधीन होकर वह सारा काम करना पड़ता है, जिसके लिए वह श्रान्त है। यदि श्रम-जीवी मनुष्य जमीन से अपना सम्बन्ध त्यागकर, किमी को नौकरी करने लग जाता है, अथवा मिलों या कारखानों में काम करने लग जाता है, तो वह दूसरे धनीजनों का दाम बन जाता है, यहाँ पर उसे वेतनदाता के लिए जीवन भर दस दस, बारह बारह, चौदह-चौदह घंटे अथवा उससे भी अधिक समय तक काम करना पड़ता है। बीच में विध्राम का नाम नहीं। काम भी एक ही प्रकार का और थका देने वाला होता है, जिसका वह कभी भी अभ्यस्त नहीं रहा है—अभ्यस्त क्या हो, जिसको उसे कल्पना भी नहीं होती—बिलकुल अपरिचित। फल यह होता है कि वह सुख, शान्ति और स्यास्थ्य में भी हाथ धो बैठता है। यदि वह इस योग्य है कि जमीन पर बस जाय अथवा काम पा जाय, जिससे बिना किमी कठिनाई के वह अपनी जीविका का उपानन कर सके, तो भी उसकी जान नहीं बचती, बल्कि उसमें तरह-तरह का टैक्स भागे जाते हैं। उसे स्वयं भी तीन, चार अथवा पांच वर्ष तक सेना के शर्चों के लिए कर देने को वह बाध्य किया जाता है। अगर बिना बुद्धि रपया स्वयं क्रिये ही सुफ्त में यह जमीन को काम में लाना चाहता है, हड़ताल आदि का प्रबंध करना चाहता है अथवा अपनी जगह पर दूसरे धर्म जीवियों को काम करने में रोकना चाहता है, या टैक्स देन से इन्कार करता है, तो उसकी हठियों की मरम्मत करने के लिए फौजें भेनी जाती हैं, जो उसे घायल कर देती हैं, मार डालती हैं अथवा पहले की भाँति फिर काम करने और टैक्स देने के लिए उसे बाध्य करती हैं।

इस प्रकार समस्त संसार के धर्मनीवा, मनुष्यों का-मा नहीं बल्कि भार-याहक पशुओं का-मा जीवन व्यतीत करते हैं। वे अपने जीवन भर

ऐसा काम करने के लिए धाध्य किये जाते हैं, जिसकी उन्हें मर्ही, उनके पीढ़कों को ध्यापर्यकता है। इसके बदले में उन्हें इतना ही भाजन वस्त्र तथा अन्य ध्यापर्यक चीजें मिलती हैं कि जिससे वे बिना किसी रूकावट के निरन्तर परिधम कर सकें। इसके विपरीत वे धाड़े से लोग जो धम-जीवियों के ऊपर शायन करते हैं, उन लार्यों-करोड़ों मजूरों की गाड़ी कमाह पर मौन उदाते हैं और आलस्य और विलासिता में जिन्दगी बरवाद करते रहते हैं। यह कैसी अनीति है।

(२)

मास्को में निकोलस द्वितीय के राज्याभिषेक के समय लोगों को आमतौर पर अच्छी अच्छी शराबें और पाव धाटे गये। लोग उस स्थान की ओर बढ़े जहाँ पर ये चीजें बाटी जा रही थीं। उस समय इतने जोर का रेल-पेल हुआ कि लोगों को धपने धापको संभालना मुश्किल हो गया। जो लोग आगे थे, उन्हें सीधे यारों ने इतने जोर का धका दिया कि वे ज़मीन पर गिर पड़े। इन लोगों के भी पीछे जो लोग खड़े थे, उन्होंने इन्हें चटनी कर डाला। चूँकि उनमें से कोई भी यह मर्ही देखता था कि आगे क्या हो रहा है, इसलिए वे सभी एक दूसरे को धका दे-देकर गिराते और कुचलते रहे। जो ताकतवर थे, उन्होंने निर्बलों को गिराकर रौंद डाला। इसके बाद काज़ी हवा न मिलन और भीड़ को धक्क धुक्का से धलानों का भी धम धुटने लगा और वे बहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े। अब जो लोग इनके पीछे खड़े थे, उन्हें पीछे से लोगों ने ऐसा धका दिया कि उनके भी पैर उरख गये थे और इस झोंके को सह न सकने के कारण वे अपनी जगह पर खड़े न रह सके और इन लोगों पर जा गिरे और उन्हें भी पीस डाला। इस प्रकार हज़ारा आदमी जिनमें वृद्ध और युवा, पुरख और स्त्री सभी थे—स्वर्ध में मौत के शिकार हुए।

जब यह सारा तमाशग इतम हो गया, तो लोगों में यह विवाद धिदा कि इस सबके लिए कौन दोषी है। कुछ लोगों ने कहा, इसमें

लिस का दोष है। कुछ बोले—इसमें सारा दोष प्रथम करनेवालों का और कुछ लोगों ने कहा इसमें सारा अपराध जार का है जिन्होंने सा भोज देने की मृत्यु पूर्ण युक्ति निकाली है। सभी ने अपने आपको दोष बाकी लोगों पर दोषारोपण किया। पर यह बात बिलकुल सार्वभौमिक है कि हममें दापी वही लोग बड़े जाने चाहिए, जिन्होंने अपने पड़ामियों के पहले रोटी का टुकड़ा और एक प्याला शराब पाने के लालच से, अपने साथी दूसरों का बिना काँडे प्रयास किये, आगे बढ़ने की काशिश की, और उन्हें जमीन पर गिराकर अपने पैरों तले कुचल डाला।

क्या ठीक, यही बात धर्म-जीवियों के साथ भी तो नहीं हो रही है? उनकी यह बुरी दया इमीलिण है, उन्हें सारे कष्ट इसीलिण भोगने पड़ रहे हैं और वे इसीलिण दूसरों के गुलाम बने हुए हैं कि अपने थोड़े से अधम स्वार्थ के लिए वे अपने जीवन का मरदानाश कर रहे हैं और अपने भाइयों का भी जिन्दगी बग़ाद कर रहे हैं।

धर्म-जीवी लोग प्रायः जमींदार, सरकार, कारगानों के मालिकों तथा सना, सभी की शिकायत किया करते हैं। पर ये इस बात को नहीं सोचते कि जमींदार जमीन से केवल इसीलिण फायदा उठा सकते हैं, सरकारें इमीलिण कर (टैक्स) वसूल कर सकती हैं, कारगानों के मालिक धर्म-जीवियों से केवल इमीलिण अपने स्वार्थ का साधन करा सकते हैं और फौजों हड़तालियों का अमन करने में सिर्फ इसीलिण सफल होती है कि धर्म-जीवी लोग इन जमींदारों, सरकारों, कारगानों के मालिकों और फौजों का बुरा सहायता ही नहीं पहुँचाते बल्कि स्वयं भी उन बातों का करते हैं निन्की कि वे शिकायत किया करते हैं। क्योंकि अगर एक जमींदार बिना चोत-धोये हजारों एकड़ जमीन से फायदा उठाने में समर्थ होता है, तो वह सिर्फ इसीलिण कि धर्म-जीवी लोग उसके घर में होकर अपने थोड़े मालाम के लिए उसका काम करते हैं, उसके धौकी दारी करते हैं, रखवाली करते हैं और दल बनकर उसके सारे काम की देख-भाल करते हैं। इसी तरह सरकार भी धर्म-जीवियों से इसीलिण

टैक्स घमूल कर सकती है कि वे स्वयं, वेतन के लालच से, जो खुद उन्हीं से घमूल हुए रुपये में से दिया जाता है, गांव और जिले के अधिकारी टैक्स-कलेक्टर, पुलिस मैन और चुन्नी आदि के अधिकारी बनकर काम करते हैं, अर्थात् सरकार को उन तमाम घातों के करने में सहायता दिया करते हैं जिनकी वे खुद शिकायत करते हैं। श्रमजीवी लोग एक शिकायत यह भी करते हैं कि कारखाने के मालिक उनकी मजदूरी घटा देते हैं और अधिक से अधिक समय तक काम करने के लिए उन्हें मजबूर करते हैं। पर यह भी सब हमीलिए होता है कि श्रमजीवी लोग स्वयं चढ़ा-ऊपरी करके अपनी मजदूरी घटा देते हैं और कोठारी, ओवरसियर, चौकीदार और फारमैन का काम करने के लिए कारखाने के मालिकों के हाथ अपने आपको बेच देते हैं, और अपने मालिक के स्वार्थ के लिए अपने ही मजदूर भाइया की तलाशियां लेते हैं, उन पर जुमाने करते हैं और उन्हें तरह तरह से हैरान और परेशान करते हैं।

अन्त में श्रमजीवियों को यह भी शिकायत है कि, अगर वे जमीन को अपने अधिकार में लेना चाहें जिसे कि वे अपनी संपत्ति समझते हैं, या वे टैक्स देने से इन्कार कर दें अथवा हड़ताल कर दें, तो उनके मुकाबिले के लिए फौजें भेजी जाती हैं। परन्तु इन फौजों के सिपाही वे ही श्रम-जीवी लोग हैं जो अपने स्वार्थ के लिए अथवा दरुद के भय से फौज में भर्ती हो गये हैं और जिन्होंने अपनी आत्मा तथा ईश्वर के विरुद्ध इस बात की शपथ ले ली है कि वे उन सभी लोगों का बंध करने में कोई सकोच न करेंगे उनके लिए अधिकारी उन्हें आना देंगे।

इसलिए श्रम-जीवियों की सारी मुसीबतें स्वयं उन्हीं की पैदा की हुई हैं।

उन्हें आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि वे धनी-जनों तथा सरकार की सहायता करना बन्द कर दें और फिर उनके इन सारे दुखों का शूल आप-से आप हो जायगा।

ता फिर क्या कारण है कि वे बराबर उन्हीं बातों को करते रहते हैं जो उनके नाश का कारण होती हैं ?

(३)

“आत्मनः प्रतिबृत्तानि परेषां न समाचरेत् ।”

हजारों पप पूर्व श्रुतियों को इस ईश्वरराय आत्मा का ज्ञान हुआ था। पारस्परिक व्यवहार का यह सर्वोत्तम नैतिक है। बाइबिल कहता है—“प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि वह चाहता है दूसरे लोग उसके साथ करें।” इसी बात को ज्ञान के महान् धर्माचार्य कनफ्यूशियस ने कहा है, “दूसरों के साथ वह बात न करा जो तुम नहीं चाहते दूसरे लोग तुम्हारे साथ करें।”

यह नियम बिलकुल आधारस्थ है और हर एक आदमी की समझ में आ सकता है। वास्तव में इसके पालन से मनुष्य का सबसे अधिक कल्याण हो सकता है। इम्लिण-उमका ज्ञान ही मनुष्य को चाहिए कि वह जितनी जल्दी मुमकिन हो, उसके अनुसार आचरण करना आरम्भ करे तथा आगे आने वाली सन्तान का इस नियम की और उमक अनुसार आचरण करने की शिक्षा देने में अपनी सारी शक्ति लगा दे।

पेमा प्रतीत होता है कि बहुत पहले लोगों को इस नियम के अनुसार आचरण करना चाहिए था, क्योंकि इसका शिक्षा कनफ्यूशियस और महात्मा बुद्ध तथा यहूदी उपदेशक हिलेल और ईसा मसीह ने एक ही समय में दी थी।

विशेषकर पेमा प्रतीत होता है कि इसाई-पंथार के लोगों को वा इस नियम के अनुसार अवश्य आचरण करना चाहिए, क्योंकि वे उम ईर्जीत का करना मुख्य धर्म-ग्रन्थ मानते हैं जिसमें स्पष्ट रूप से इसी नियम को धर्म और कानून का सार बताया गया है अर्थात् इसी में वह सारा शिक्षा है जिसका मनुष्य को आवश्यकता है।

पर हजारों पप बीतने पर भी लोग इस नियम के अनुसार आचरण

तो करते ही नहीं और न बच्चों का उसकी शिक्षा देते हैं, बल्कि कई लोग तो ऐसे हैं जो इसे जानते तक नहीं और यदि जानते भी हैं तो वे इसे या तो अनावश्यक समझते हैं या अत्यवहाप मानते हैं ।

पहले तो यह बात बिलकुल विचित्र-सी जान पड़ती है, परंतु जिस समय मनुष्य इस बात पर विचार करता है कि हम नियम का ज्ञान हाने के पूर्व लोग किस प्रकार रहा करते होंगे, और वे इस प्रकार से कितने समय तक रहे होंगे, साथ ही यह नियम आधुनिक मानव-जीवन के सिद्धांतों से कितने अर्थों में भिन्न है, तो यह बात समझ में आती है कि इस नियम का पालन क्यों नहीं किया जा सका ।

इसका कारण यह था कि लोगों को इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि सब साधारण के कल्याण की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वही करना चाहिए जो वह चाहता है दूसरे लोग उसके साथ करें । (यद्यपि यह तो साफ बदले की नीति है) इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए दूसरे मनुष्यों के ऊपर इतनी अधिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता था, जितनी कि उससे ही सकती थी ।

इसके पश्चात् उस शक्ति से बेरोक लाभ उठाने के अभिप्राय से अपने से अधिक शक्तिशाली मनुष्यों की अधीनता में उसे रहना पड़ता और उनकी सहायता करनी पड़ती थी । पुनः इन शक्तिशाली मनुष्यों को फिर अपने से अधिक शक्तिशाली मनुष्यों की अधीनता में रहना पड़ता और उनकी सहायता करनी पड़ती थी ।

इस तरह ऐसे समाज में, जो पारस्परिक व्यवहार की हम सीधी नीति से (अर्थात् दूसरों के साथ वही करना जो मनुष्य चाहता है दूसरे लोग उसके साथ करें), बिलकुल अनभिन्न है, हमेशा अल्प-संख्यक मनुष्य याकी आदमियों के ऊपर शासन किया करते हैं ।

जिस समय मनुष्यों को इस नियम का ज्ञान हुआ, उस समय वे अल्प संख्यक सत्ताधारी नहीं चाहते थे कि वे स्वयं उस नियम की स्वी-

कार करें। वे या टखटा यह चाहते थे कि जिन लोगों पर वे अपना आधिपत्य जमाये हुए थे, व भा उम बात को न समझें और न उमे धपनायें।

दूसरों पर आधिपत्य रखने वाला यह याद से लोगों का गिराह इस बात को भली प्रकार जानता था और अब भी जानता है, कि उसका जा यह शक्ति प्राप्त हुई था और इस समय भी प्राप्त है उसका कारण क्या है ? यह शक्ति उस इमीलिण प्राप्त है कि जिन लोगों पर वह शासन करता है वे आपस में लड़त-भगड़त रहते हैं और इमेगा एक-दूसर का नीचा दिखाने तथा उम अपना अधीनता में बनायें रखने का प्रयत्न किया करत है, और इमलिण मत्ताधारी अपन शामिल लोगों से इस नियम को दिपाये रखन क लिण अपना शक्ति भर यत्न करत रह है और कर रह है।

यह नियम इतना सरल और मत्र-माधारण क समझन योग्य है कि मत्ताधारी इस नियम का न हां दिपा सकते और न उम अस्वाकार ही कर सकत है। पर लोगों का मुलाज में ढालने क लिण वे ण्य मैकड़ों हजारों दूसरे नियम उनक सामन पर कर दत है जिन्हें व इस मुबण-नीति से कहीं अधिक आवश्यक और उमका अरेजा कहीं अधिक मान्य बतलात है।

इनमें से थोड़े थोड़े धयान् धमाधिकारी लोग मैकड़ों ण्य धार्मिक सिद्धान्तों, पूजन-याठ का विधियों, श्रेयाचना और प्रायना आदि क नियमों की सिपा दत है जिनका इस उच्च चरहर-जाति से जरा भी संघ नहीं है और उन्हें व मयमे अधिक आवश्यक इ-वरीथ नियम बतलान है। वे यह भी दर बतात है कि इनक अनुसार आचरण करन में कहीं अमाधधानी होगा तो मनुष्य का इहलोक और परलोक दानों सदैव क लिण बिगड़ जायेंग।

कुछ लोग धयान् मानक-समाज क हाग धमाधिकारियों द्वारा आधिपत्य इस सिपा का स्वीकार कर भागे ददने है और इसक आधार

पर उसे सान्नीतिक नियमों की रचना करते हैं जो उपयुक्त व्यवहार-नीति के सबंध में विरोधी हैं। वे दण्ड का भय दिखाकर सबको अपने नियमों का पालन करने की आज्ञा करते हैं।

पर कुछ लोग इनसे भी बड़े बड़े हैं—विद्वान् और धनी। वे न तो ईश्वर का मानते हैं और न किसी ऐसे ईश्वरीय आदेश को स्वीकार करते हैं जिसे पालन करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। वे कहते हैं—विज्ञान और उसके नियमों के अतिरिक्त ससार में कुछ भी नहीं है, विद्वान् लोग इनको खोज करते हैं और अमीर लोग उन्हें सीखते हैं। वे कहते हैं कि सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि शिवालयों, ग्यारहानों, नाटकों, प्रौढ़ स्थलों, विश्व-शालाओं और सभाओं के जरिये सबका उनकी शिक्षा दी जाय। और सब लोग अपना भी जीवन उसी प्रकार आलस्यमय बनाने जैसा कि, विद्वानों और अमीरों का होता है। और तब, वे जोरों से प्रतिपादन करते हैं, कि वे तमाम बुराईयाँ, जो भ्रम-जीवियों के दुःख-दारिद्र्य और कष्ट का कारण हो रही हैं, आपसे आप नष्ट हो जायगी।

इनमें से किसी भी श्रेणी के मनुष्य उस सुवर्ण नियम को धरती का नहीं करते कि तु इसके साथ-साथ वे भक्ति भाव के इतने धार्मिक सान्नीतिक तथा वैज्ञानिक नियम तैयार करके रख दते हैं कि उनके बीच में किसी का ध्यान उस ईश्वरीय नियम की ओर नहीं जाने पाता, जो बिल्कुल सरल एवं सुगम है और जिसने पालन करने से अवश्य ही अधिकांश जन-समाज का दुःख, दारिद्र्य एवं कष्ट दूर हो सकता है।

यही कारण है जिससे सरकार तथा धनिक समाज द्वारा पीड़ित भ्रम-जीवी पीढ़ी दर-पीढ़ी अपने तथा अपने भाइयों के जीवन का सत्याभास करती हैं, अपनी दशा सुधारने के लिए ईश्वर प्रार्थना, पूजा करना, पुण्य-घाटों का आश्रमों का पालन करना, सभाएँ करना, भ्रमोन्मिश्रित कार्यक्रम करना, व्यापारिक संस्थाएँ खोलना, हड़ताल करना, धरती करना इत्यादि दुनिया भर के जटिल, कुटिलतापूर्ण अथवा कठिन

साधनों का आश्रय लिया करत है। किन्तु वे इस एक मात्र उपाय में काम नहीं लत, उस इश्वरीय आत्मा का पालन नहीं करते, जो निरिच्छत रूप से उन्हें अपने दुःखमय जीवन से मुक्त कर सकता है।

(४)

धार्मिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और सामाजिक रुग्णों की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भटकन वाले कहेंगे—“परन्तु क्या यह सम्भव है कि—
“आत्मव्यभवमृतपु य परयति” अथवा “आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्” (अर्थात्—‘लोगों को दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जो वे चाहत हैं दूसरे लोग उनके साथ करें।’) जैस सूत्रों में सम्पूर्ण इश्वरीय आत्मा और मानव धर्म का मार पूर्ण रूप से आ जाय ?”

जैसे लोग यह समझते हैं कि इश्वरीय आत्मा तथा मनुष्य के धर्म का प्रतिपादन सीधी और सरल भाषा में नहीं हो सकता बल्कि विस्तार पूर्ण एवं जटिल सिद्धान्तों के रूप में उसका समझाया जाना जरूरी है।

यह बात बिलकुल सत्य है कि यह मय बहुत छोटा और सरल है, परन्तु इसका छोटापन और सरलता ही इस बात का प्रमाण है कि यह एक मर्यादा, स्पष्ट, त्रिकाल टिकनवाला और धर्म-सम्मत नियम है—जो इश्वरीय नियम है, जो मनुष्य जाति के हजारों वर्षों के अनुभव का निष्कर्ष है, यह किसी अन्य मनुष्य अथवा मनुष्य-समाज का बनाया हुआ नियम नहीं, जो अपने-आपको धर्म (धर्म) के रक्षक शायक या वैज्ञानिक कहते हैं। राज्य के कानूनों एवं विज्ञान की पाणियों में बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें हो सकती हैं। उनमें कई बातों की गहरी और क्लिष्ट खोज की गई है। यह सब बुद्धि-युक्त और महत्त्वपूर्ण भले ही हो, पर इन बातों को केवल याद से लाग ही समझ सकते हैं। किन्तु, यह नीति जमी है जिस सब समझ सकते हैं और उस पर धर्म भी कर सकते हैं। जाति, धर्म, विद्या, धर्म, आदि किसी बात की कैद नहीं।

धार्मिक, राजकीय थयथा वैज्ञानिक दलीलें, जो किसी एक स्थान और एक समय में सही मान ली गई हैं, दूसरे स्थान और दूसरे समय में गलत हो सकती हैं। परन्तु यह व्यवहार नीति ऐसी है, जो त्रिकाल सत्य है, जिन लोगों ने भी उसे एक बार समझ लिया है उनके लिए वह हमरा सही बनो रहेगी।

दूसरे नियमों में एक मुख्य अंतर है। इन तमाम धार्मिक, राजनीतिक एवं वैज्ञानिक नियमों से लोगों को न सच्ची शान्ति मिलती है और न उनका कल्याण हा हाता है। मच तो यह है कि इन नियमों की बदौलत ही लोगों में अधिकाधिक घैर भाव एवं दुःख दारिद्र्य की वृद्धि होती है।

इसके विपरीत हमारी व्यवहार-नीति से—आचार के इस सुवर्ण सूत्र से मनुष्य को सच्चा सुख, प्रेम और शान्ति प्राप्त हो सकती है। उसका लोक परलोक दोनों सुधर जात हैं। बस, आदमी सिफ एक बात को मान ले और उसपर अमल करे—कभी दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार न करे, जो हमारे साथ होने पर हमें नापसंद हो। “आत्मन प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत् ?” यह नाति शर्यत लाभप्रद एवं मनुष्य जाति का उपकार करने वाली है हा यदि लाग इस पर अमल करें। यह मानव-समाज व सभी पारस्परिक सम्बन्धों को निधारित करती है। दूष तथा लड़ाई मगद के स्थान पर प्रेम भाव तथा सेवा भाव की प्रतिष्ठा करती है। यदि मनुष्य अपन आपका ऐस धोलाईह नियमों से बचा ले जा इस नीति को अपने जाल में ज़िपाय हुए हैं, यदि मनुष्य उसकी आशयकता और मानव जीवन के लिए उपयोगी नीति को समझ ले ता एक ऐसे नवीन अर्पूर्व विज्ञान का आविष्कार हा जाय जो सब मनुष्यों के लिए एक-मा उपकारी और समार का सबसे अधिक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विज्ञान होगा। एसा विज्ञान जा उस नियम के आधार पर यह सिद्धा दता है कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों तथा व्यक्तियों और समाजों के बीच हान वाले मगदों का अंतर किस प्रकार

किया जा सकता है। और अगर हम अर्ध-विज्ञान का अविष्कार हो जाय, वह उड़ पकड़ जाय, हमका अध्ययन किया जाय तथा आजकल के हानिकर धार्मिक भिष्या विरवासों तथा प्रायः अनुपयोगी अथवा नाशक विज्ञानों की शिक्षा के स्थान पर नवयुवकों और बालकों को उसकी शिक्षा भी दी जाय, तो मनुष्यों का मारा जीवन ही बन्द जाय और हमीक माय-माय उस कष्टमय परिस्थिति का भा परिवर्तन हो जाय जिममें अधिकांश जन-जमात्र इस समय जीवन बिता रहा है।

(५)

शास्त्रिल में यह बतनाया गया है कि हम व्यवहार-नीति का प्रादुर्भाव हान के पूर्व परम पिता परमेश्वर ने मनुष्य की 'अपना कानन' दिया।

हम कानून में यह आज्ञा का गढ़ था कि "किमी का बध न कर।" यह आज्ञा भी अरन समय में उतनी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थी कि जैसी बाद में मूझी हुई व्यवहार-नीति। पर हम आज्ञा की भी वहा दुदगा हुई ना हम मदाचार-मूत्र की हुई। लोगों ने प्रकट में तो हमका काद विरोध नहीं किया, किन्तु हम मदाचार-मूत्र के समान यह भा दूमेरे नियमों तथा राजाजाओं के आज्ञ में पड़कर लुप्त हो गई, जो इस प्रेमधर्म या अहिंसा के समान ही अथवा उसकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वपूर्ण मान जान लग। अगर धम प्रन्यों में केवल यहा एक आज्ञा होती कि "किमी का बध न करो" तो लोगों को यह स्वीकार करना पड़ता कि हमका मानना अनिर्णय है। हमने किमी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता और हमका स्थान कोई दूसरा कानून नहीं ले सकता। मध्य ही अगर लोगों ने भी हमका कानून को हरपर की एक-मात्र आज्ञा मान लिया होता और उम कड़ाई के साथ उमका पालन भी करते, जिनका कि वे धम के दूमेरे आदम्बरा की रक्षा के लिए काम में खाने है, तो भी मनुष्य का मारा जीवन एक भिन्न ही रूप धारण कर लेता, और पुद तथा गुनामी की जरा भी सम्भारना न रह जाती। अगर

ऐसा होता तो न धनवान निर्धन से जमीन छीन सकते न मुट्टी भर भादमी बहुत से श्रम-जीवियों की कमाई धाजकल की तरह हड़प कर सकते, क्योंकि इन सबकी जड़ भय प्रदर्शन की नीति है। हा, यदि यही एक-मात्र ईश्वरीय नियम होता कि किमी का घघ न करते तो सत्तार का स्वरूप आज जुदा ही होता। परन्तु दुभाग्य यश और आशा भी धर्म ग्रन्थों में दी गई जिन्हें कि एक आज्ञा के समान ही महत्त्व दिया गया। और अन्त में इनकी सख्या इतनी बढ़ गई कि यह ईश्वरीय आज्ञा उस जाल में बिलकुल गुम गई। फल यह हुआ कि आज भी उसे उचित महत्त्व नहीं दिया जा रहा है। यही बात उस व्यवहार नीति के सम्बन्ध में भी हुई।

इसलिये बुराई की जड़ यह नहीं कि लोग ईश्वरीय आज्ञा को नहीं जानते। बल्कि बुराई की असली जड़ ता ध लाग है, जो ईश्वरीय आज्ञा के पालन का अपन लिए हानिकर समझते हैं। ये कौन हैं—धर्माधिकारी और शासक-वर्ग के थोड़े लोग, विद्वान् वैज्ञानिक और घनिक लोग जो इस ईश्वरीय आज्ञा का विरोध नहीं कर सकत, उसे झूठ भी साबित नहीं कर सकते, उसको गष्ट भी नहीं कर सकत, पर जो मनुष्य-समाज की मुलायमे में ढालने के लिए दूसरी सँकड़ों शिष्टाओं का भी आविष्कार करते हैं और इन अपनी बताई शिष्टाया का भी ईश्वरीय आज्ञा के समान महत्त्वपूर्ण बताते हैं। इसलिये अपनी इन तमाम मुसीबतों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य उन तमाम धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक अध विश्वासों को छोड़ दे जो जीवन के आवश्यक और अनिवार्य नियमों के रूप में उनके सामने पेश किये गए हैं, और स्वीकार कर लें उस अटल सत्य और ईश्वरीय कानून को जो कबल थोड़े स मनुष्यों का नहीं, धरन् समस्त सत्तार भर क मनुष्यों को अधिक-से-अधिक सुख, समृद्धि एवं शान्ति दिला सकता है।

सरकारें और धनवान लोग उनके धन और जीवन का अपहरण करना बन्द कर दें, इस अभिप्राय से श्रम-जीवियों के लिए अपनी

गदगी दूर कर देनी चाहिए। अपवित्रता गदगी से पैदा होती है और दूसरे के शरीर के ऊपर पोषण उमी समय तक होता रहता है जबतक कि वे मैल रहते हैं। इसलिए श्रम-जीवियों के लिए अपनी इस दुःख-वस्था से मुक्त होने का केवल एक ही उपाय है—यह यह कि वे अपनी शुद्धि करें। और उन्हें अपने आपको शुद्ध करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि वे धार्मिक, राजकीय तथा वैज्ञानिक मिथ्या विरक्तों से मुक्ति प्राप्त करें और ईश्वर तथा उसके कानून में विश्वास करें।

यहां उनकी मुक्ति (आजादी) का सीधा और मर्यादा मार्ग है।

वर्तमान समय में प्रायः दो प्रकार के श्रम-जीवी मिलते हैं—शिक्षित और मामूली अशिक्षित आदमी। ये दोनों आधुनिक सभ्यता के विरोधी हैं और उसके प्रति रोष प्रकट करते हैं—शिक्षित श्रम-जीवी न तो ईश्वर में विश्वास रखता है न उसके कानून में, यह मार्क्स, लैसले आदि (साम्यवाद के आद्य प्रणेता) पुरुषों को ही जानता है। वह बेरोजगारी, आदि की पालमेंटों में होने वाले कार्यों का अनुगमन करता है, तथा जमीन के छीनने के काम करने के साधनों और उत्तराधिकार की प्रथा में जो अत्याय है उस पर लम्बे चौड़े और मनमानी फैसला देने वाले व्याप्यमान काइता है और अशिक्षित श्रम-जीवी, यद्यपि इन बातों से बिलकुल अनभिज्ञ है और उसको ईश्वर के प्रीति अतार और पाप-मोचन शक्ति आदि में विश्वास है, तथापि जमींदारों और पूजापतियों का तो वह उतना ही कट्टर विरोधी है और सम्पूर्ण वर्तमान सभ्यता को अनुचित मानता है। फिर भी आप इस श्रम-जीवी को, चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, जरा इस बात का अवसर दीजिए कि वह दूसरों की अपेक्षा सस्त दाम की चीजें तैयार करके अपनी दशा सुधार करे। यद्यपि हममें उनके सैकड़ों, हजारों और लाखों भाइयों का खून ही क्यों न हो जाय—अथवा काइण्य मीका दीजिए जिससे वह बड़ी-बड़ी तनतवाह के झालस स ऊर्ध्व-ऊर्ध्व जगहों पर पूजापतियों की नौकरी कर सके अथवा घोड़े से मजदूरों को नौकर रखकर स्वयं कीड़े व्यापार

करना आरम्भ कर द—वा आप देखेंगे कि हज़ार में प्राय नौ सौ निर्यातों आदमा विधक-शून्य हाकर उस काम की करने लग जायेंगे और अपनी जमीन जायदाद की पेची रक्षा करेंगे जैसी शायद खानदानी जमींदार भी मुद न करते ।

सेना में भर्ती होना अथवा सामरिक कोप के लिए मारे जाने वाले टैक्सों को वसूल कराने में सहायता देना भी हा नैतिक दृष्टि से अनुचित है । यही नहीं बल्कि यह तो उनक तथा उनक साधियों, दानों के लिए एक-मा हानि प्रद है और इसी के कारण वे गुलाम बने हुए हैं । परन्तु पर विचार करने का कोई कष्ट नहीं उठाता और सब लोग या तो मुसी सुरी सैनिक खर्चों के लिए कर (टैक्स) दते चले जात हैं या स्वयं सेना में भर्ती हो जाते हैं और ऐसे कामों को उचित समझत रहत हैं ।

क्या यह सम्भव है कि एस लोगों में से किसी भी एस नवीन समाज का निमाथ किया जा सकता है जा वतमान सामाजिक सगमन से बिलकुल जुदा हो ?

धर्म-जीवी लोग अपनी इस दुरवस्था का सारा दोष जमींदारों, पू जीपतियों तथा मैजिस्ट्रों की अथ लालुपता और उनक अत्याचारों पर ही मदत है । परन्तु प्राय सभी धर्म-जीवी जिन्हें हरवर तथा उसक कानून में कोई विश्वास नहीं है, मरघ भी छोटे छोटे जमींदार, पू जीपति और अत्याचारी (सैनिक) हैं । एक सिर्फ यही है कि ये इतन छोट हैं कि इन्हें थड़े-थड़े पू जीपति, जमादार विपादियों की-सी सफलता नहीं मिल सकती ।

एक ग्रामीण बालक अपनी रोजी की तलाश में एक नगर में अपने एक मित्र के पास आता है जा एक धमीर सौदागर के यहां कोचवानी करता है, और उससे यह प्रार्थना करता है कि वह प्रचलित नौकरी की दर से कम पर भी उसक लिए कोई जगह तलाश कर द । वह ग्रामीण बालक देसी नौकरी करने को तैयार हो जाता है, परन्तु दूसरे दिन सवेरे आने पर नौकरों के कमर में वह अकस्मात् यह सुनता है कि एक बुद्ध

आदमी अपनी नौकरी से अलग कर दिया गया है अब वह लाचार है और यह भी नहीं जानता कि किस प्रकार अपना जीविका चलावे। बालक को उस बुद्धे की दशा देखकर बड़ा दुःख होता है और वह दूसरे के साथ ऐसा काम न करने की इच्छा स, जो कि वह चाहता है दूसरा आदमी उसके साथ न करे, अपनी नौकरी छोड़ देता है। अथवा एक किसान है, जिस पर एक बहुत बड़े कुटुम्ब के भरण पोषण का भार है वह एक अमीर और जयन्ती दूसरों का धन अपहरण करने वाले जमींदार के यहाँ अच्छी तनखाह के ऊपर कारिन्दगीरी का काम करना मजूर कर लेता है। जब वह कारिन्दा यह दखता है कि उसके कुटुम्बियों को खूब अच्छी तरह खाने-पीने को मिल जाता है, तो वह अपनी इस नौकरी के ऊपर फूल उठता है। लेकिन ज्यों ही वह अपने काम का धार्ज लेता है, त्यों ही उसे किसानों के ऊपर उन जानवरों के लिए जुमाना करना पड़ता है जो बड़े आदमियों के गेटों में भटक कर चले जाते हैं, - उस उन औरतों को पकड़ना पड़ता है जो ईंधन के वास्तु उस जमींदार के जंगल में लकड़ी खीनती हैं, और उस मजदूरों की मजदूरी घटाना और उन्हें अपनी मारी शक्ति लगाकर काम करने के लिए मजबूर करना पड़ता है कि उनकी अन्तरात्मा उसे इन बातों के करने का आधा नहीं देती। वह इन कामों के करने से इन्कार कर देता है और अपने घर वालों के घुरा भला कहन पर भी अपनी नौकरी छोड़कर एसी जगह काम करने लग जाता है जहाँ पहन की अपेक्षा उसे कम आमदनी होती है। अथवा एक पिपाही अपने साथियों के सहित अम-जीवियों के साथ लड़ाई करने को बुलाया जाता है जो वागी हो गए हैं और उममे उन पर गोली चलाने का कहा जाता है। वह एमा करने से इन्कार कर देता है और इसलिए उसे उसके लिए कठिन दण्ड दिया जाता है। इन सब लोगों के एमा करने का कारण बयल यह है कि जो घुराई वे दूसरों के साथ करते हैं वह उन पर प्रकट हो गई है और उनका अन्तःकरण उन्हें साफ-साफ यह बतला देता है कि जो बुद्ध भी वे कर रहे हैं वह हरव-

रीय कानून के सर्वथा विरुद्ध है। अर्थात् यह कि मनुष्य को दूसरों के साथ ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिस वह नहीं चाहता कि दूसरे लोग उसके साथ करें। अगर कोई भ्रम-जीवी, मजदूरी को गिरा करके काम करना मजूर करता है और यदि उसे दूसरे लोगों का ध्यान नहीं है तो इससे वह जुक्सान कम नहीं हो जाता, जो वह अपने इस कार्य से अपने अन्य मजूर भाइयों का पहुँचाता है। हानि उस हालत में भी कम नहीं होती जब कोई भ्रम जीवी मालिका की ओर मिल जाता है और जो कुछ हानि वह अपने भाइयों को पहुँचा रहा है उसे न तो देखता है और न उसे उसका खयाल ही होता है। यही बात उस आदमी के सर्वथा में भी है जो सेना में भर्ती हो जाता है और आवश्यकता पड़ने पर अपने भाइयों तक को मार डालने के लिए तैयार हो जाता है। अगर सेना में भर्ती हात समय उस यह नहीं दिखाई पड़ता कि जिस समय वह बन्दूक और संगीनों का चलाना सीख जायगा, उस समय किन लोगों को और कहाँ पर वह मारगा तो भी इस बात का तो वह अवश्य ही समझ सकता है कि गाली चलाना और संगीनों से लोगों पर चार करना उसका काम होगा।

और इमलिष्ट यदि भ्रम वाली न्याय श्रव्याचारों और दाम्पता में अपना सुटकारा करना चाहें तो उन्हें चाहिए कि वे अपने अन्दर वह धार्मिक भाव उत्पन्न करें जो तमाम बुरे कामों को करने से मना करता है, जो उनके भाइयों की स्थिति को और भी अधिक बिगाड़ दान वाले हात हैं, यद्यपि प्रकट में इस बुराई का पता नहीं चलता। धार्मिक दृष्टि से उन्हें चाहिए कि, यदि वे, और तरह से गुजर कर सकत हैं तो पहल तो पूजा पतियों के लिए काम करना बन्द कर दें, दूसरे जा मजदूरी की शरह इस समय जारी है उससे कम के उपर काम करना स्वीकार न करें सीसरे पूजा पतियों से मिलकर और उनसे स्वाथ के लिए काम करके अपनी दशा सुधारने का व्यर्थ प्रयत्न न करें और चौथ और

सुदृष्ट पुलिम में नौकरी करके अथवा खुशी घर या फौज में काम करके अथवा अन्य किसी तरह सरकार की ओर से किये जाने वाले अत्याचारों में कोई भाग न लें।

इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से विचार करके अपने सारे कामों को करने में ही धर्म-जीवी लोग अपने इस दुःसमय जीवन से छुटकारा पा सकते हैं।

यदि एक धर्म-जीवी अपने स्वार्थ अथवा भय के कारण सुसंगठित हथारों (गुनियों) की श्रेणी में अपना नाम लिखाने को तैयार है, अर्थात् वह सैनिकों में अपना नाम लिखा जाता है और उनकी अन्त-राम्भा उसके इस कार्य की कुछ भी निन्दा नहीं करती, यदि अपनी सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिए वह जान-बूझ कर अपने भाइयों के गले पर, जो उनका अपेक्षा अधिक निबल और निधन हैं, छुरी फेरने और उनका धन अन्वेषण करने के लिए तैयार हो जाता है अथवा अपनी तनखाह के लालच में अत्याचारियों से मिल जाता है और उनके सब कामों में उनकी सहायता करता है तो उसे किसी भी बात के सम्बन्ध में कोई शिकायत न करनी चाहिए।

चाहे जिस ईमानदार में भी यह रहे, यह हर हालत में या तो दलित है या दलन करने वाला। इसमें मियाय तो वह कुछ हो भी नहीं सकता। ईश्वर तथा उसके कानून में अगर उसे विरवाम न होगा तो अनुपय मियाय इसके कि अपने इस अल्प-जीवन में अधिक-से अधिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति कर लें, और किसी भी बात की मन में चमि-साया नहीं रखता। इसका परिणाम हमारे लोगों के लिए फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो। और अजय समय हर एक आदमी यह चाहने लगता है कि उस अधिक-से अधिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति हो, बिना इस बात का क्याल किये हुए कि इसमें हमारे लोगों की हानि होती है अथवा लोग, उस समय ऐसे लोगों का, फिर समाज का संघटन किसी

भी प्रकार का क्यों न हो, एक 'कोन'-सा बन जाता है जिसकी चोटी पर शासक-मण्डल और नीच की ओर उनके द्वारा शासित जनों का समुदाय है।

सरकारें

- १ समाज-सुधारको से अपील
- २ स्वदेश-प्रेम और सरकार
- ३ साम्यवाद—राजकीय तथा धार्मिक
- ४ अराजकता
- ५ सुधार के तीन तरीके

भी प्रकार का क्यों न हा, एक 'कोन'-सा बन जाता है जिसकी चोटी पर शासक-मण्डल और नीच की ओर उनक द्वारा शासित जनो का समुदाय है ।

सरकारें

- १ ममाज-मुधारको से अपील
- २ स्वदेग-प्रम और सरकार
- ३ माम्यवाद—राजकीय तथा धार्मिक
- ४ अराजकता
- ५ मुधार के तीन तरीके

[१]

समाज-सुधारकों से अपील

The most fatal error that ever happened in the world was the separation of Political and Ethical Science —Shelley

अध्यात् ससार में जा सबसे बड़ी भयकर भूल हुई है, वह राज नीति का नीति-शास्त्र से अलग कर देना है। —शैली

अपने 'धर्म नीतियों का प्रति' शीर्षक लेख में मैंने यह राय बाहिर की है कि, यदि धर्म जीवी लोग अपने आपको इन कष्टों में उधारना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि वे स्वयं इस समय जिस प्रकार का जीवन चिता रहे हैं उसे, अर्थात् अपनी व्यक्तिगत भलाई के लिए अपने पड़ोसियों से झगड़ना, छाड़ दें, और धर्म-ग्रन्थ में बतलाये नियम के अनुसार बरतें अर्थात् दूसरा के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा कि वे चाहते हैं कि दूसरे लाग उनके साथ करें।

पर जैसी कि मुझे आशा थी, भिन्न भिन्न प्रकार के विचार के लोगों ने एक स्वर से मेरे बताये माग की निंदा का।

लोग कहते हैं "यह उपाय तो बिलकुल अ-व्यावहारिक है। अत्याचार और बल प्रयोग से पीड़ितों की मुक्ति के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करते रहना, जब तक कि वे सब धमात्मा न बन जाय, वतमान सुराई को चुपचाप स्वीकार करना है—मनुष्य को अकर्मण्य (काहिल)

चना दना है।" क्योंकि न तो भव लोग धमाग्मा बनेंग और न उनकी सुन्नित की कोड सुरत ही होगी ।

मैं इस सम्यघ में कुछ शब्द कह देना उचित समझता हूँ । मैं चता दना चाहता हूँ कि मैं इस उपाय को उतना अव्यग्रहाय क्यों नहीं समझता जितना कि यह प्रतात होता है । आनखकता सिर्फ़ इस बात की है कि रिषान-वेत्ताओं न सामाजिक व्यवस्था को सुधारन के लिए निन उपायों को बतलाया है, उन सबकी अपेक्षा इसकी और अधिक ध्यान रखा जाय । मैं यह शब्द उन लोगों म कहना चाहता हूँ जो सखे हृदय से, केवल शब्दों म ही नहीं खन् काय रूप में भी, अपन पदाभियों की सेवा करन क इच्छुक है । इन्हों लोगों को सम्बोधित करव मैं इस समय कुछ कहना चाहता हूँ ।

(१)

सामाजिक जीवन क आशा, निनक ऊपर मनुष्यों क सारे काम का न हान है, बदलत रहत है, और उन्हीं क साथ-साथ मानव जीवन का व्यवस्था-क्रम भा बदलता रहता है । एक समय वह था जब सामाजिक जीवन का आदश प्राणा-मात्र की पूष स्वतन्त्रता था । उम समय एक मनुष्य-समाज, नहां तक कि उमसे हो मकता था, दूसर मनुष्य-समाज का भक्षण कर जाता था । इस भक्षण शब्द का यहा पर यथाथ तथा आलकारिक दोनों अर्थों में प्रयोग किया गया है। इसके बाद वह जमाना आया जब समाज का आदर्श हो गया ब्यहित निशय का शक्ति-मवय करना । अय लोग कभी अपन शक्तों की सत्ता के विरोधी हो जात, तो कभा अपन आप उल्हाह के साथ-साथ उनकों सत्ता को कदूल कर लेत । इसके बाद, लोग जीवन के उम मगठन का अपना आदर्श मानने लगे निममें मनुष्य जीवन को सुखवस्थित और उमे ममुचित रीति म मंगठित करने क लिए शक्ति का आधय लिया जान लगा । एक समय इस आदर्श को काय रूप में लान का उद्योग विरव-व्यापी एक-व्यंश राज्य की स्थापना करना था, इसके पश्चात् शान-भत्ता धम क अर्धीन

हुड़ । बड़े बड़े राजाओं का धमाचार्यों के अधीन होना पड़ा । धर्म-मत्ता के बाद प्रतिनिधित्व का आदर्श का जन्म हुआ और तत्परचात् प्रजातन्त्र का । प्रजातन्त्र सब जगह एक-सा नहीं था, इसमें कहीं सर्व-साधारण को अपना मत प्रकट करने का अधिकार था भी और कहीं नहीं था । इस समय इस आदर्श को आर्थिक संगठन के द्वारा काय रूप में परिष्कृत करने के प्रयोग हो रहे हैं । परिश्रम करने के समस्त साधन (धौजार) अब किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति न रह जायेंगे । बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्पत्ति हो जायेंगे ।

ये आदर्श एक दूसरे से चाहें कितने ही भिन्न क्यों न हों, जीवन में उन्हें कार्य रूप देने के लिए हमेशा शक्ति अनिवार्य मानी गई है— अर्थात्-एसी बलवान् सत्ता की जिससे लोग [तत्कालीन निश्चित कानून को मानने के लिए मजबूर किये जा सकें] । इस समय भी वही बात है ।

लोगों का ख्याल है कि मनुष्य जाति का सबसे बड़ा हित-साधन सत्ता द्वारा हो सकता है । कुछ मनुष्यों के हाथों में अधिकार दे दिये जाने चाहिए । (चीनियों के उपदेशानुसार ऐसी लोग सबसे अधिक धमात्मा होने चाहिए । यूरोप की शिक्षा के अनुसार वे प्रजा द्वारा नियोजित सदस्य होने चाहिए) व लाग अधिकार पान पर उस संघटन की स्थापना और सहायता करेंगे जो मनुष्यों की कमाई स्वतंत्रता और जीवन की समुचित रक्षा की जिम्मेदारी ले सके । सभी लोग अर्थात् वे, जो वर्तमान राज्य व्यवस्था को मानव-जीवन की आवश्यक शर्त मानते हैं और वे प्राक्तिकारी और साम्यवादी भी, जो इस वर्तमान राज्य व्यवस्था को पलट देना आवश्यक समझते हैं, इस शक्ति की महत्ता को स्वीकार करते हैं । और इस शक्ति या सत्ता के मानी क्या है ? यही कि कुछ लोगों को यह अधिकार हो, और उनके लिए यह सम्भव भी हो कि वे दूसरे लोगों का बाध्य कर सकें कि वे निर्दिष्ट कानून को सामाजिक व्यवस्था की आवश्यक शर्त मानें ।

यही प्रथा प्राचीन समय से चली आइ है और अब भी है। परन्तु जो लोग मत्ता की महायत्ता से कुछ नियमों को मानने के लिए बाध्य किये जाते थे, उन्होंने अर्थात् शर्मिष्ठों ने हमें इन नियमों को सर्वोत्कृष्ट नहीं माना और इंग्लिश वे कमा-कमा मत्ताधारियों के विरुद्ध उठ खड़े होते उन्हें गंगा में नाचे उतार देने थे और पुरानी शासन व्यवस्था के स्थान में नवीन शासन-व्यवस्था की स्थापना कर देते थे, जिसमें वे अपने को अधिक मुग्नित समझते थे। तथापि मनुष्य के हाथों में मत्ता धात ही निम्न पत्रित जाता था, इंग्लिश वे अपनी शक्ति का इतना अधिक उपयोग स्व-स्वाधारण के लिए नहीं करत थे तबना अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए। इंग्लिश नया शासन हमेशा पुराने शासन के ही समान बलिक कमी-कमी उसको अपेक्षा भी अधिक अन्याय-पूर्ण रहा है।

प्रचलित शासन के विरुद्ध बगारत करन वालों ने मत्ता विजय प्राप्तिके बाद यहाँ किया है। दूसरी ओर, जब विजय त्री तत्कालीन शासकों के ही हाथ में रहता तो ता शासक लोग भा विजय होने के कारण हमेशा अपने मरहल के मानकों का और भी बढ़ा लेते थे, और इस प्रकार अपने नागरिकों का स्वाधानता के लिए और भा अधिक हानि-कारक हो जाते थे।

क्या हा हमेशा मूल और वर्तमान काल में होता आया है। पर मनुष्य १२ वीं शताब्दी में हमारे यूरोपीय समार में जिस प्रकार से यह सब हुआ है, तबसे एक विजय ही प्रकार की सिद्धा मितता है। इस शताब्दी के पूरा में प्रायः शान्तियों में विजय प्राप्त हाता रही। परन्तु तिन अधिकारियों ने पुराने शासकों का स्थान ग्रहण किया— उदाहरणार्थ नगोलियन प्रथम, चार्ल्स दसम, नगरियन तृतीय आदि— उन्होंने नागरिकों की स्वाधानता का नहीं बढ़ाया। और १२ वीं मने के उत्तरार्ध में, मन् १८५८-६० के बाद, शान्ति के धारे प्रथम सरकार की धोर म सेवा दिये जाते थे, और पहल की शान्तियों तथा उन नई

क्रातियों के कारण, जिनके लिए उद्योग किया गया, सरकारों ने अपने आपकी अधिक सुरक्षित एवं समर्थ बना लिया, और इस विगत शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों की बढ़ती त तो लोगों को प्रकृति तथा एक दूसरे पर एक अधिकार प्राप्त होगया है कि जिनको लाग पहल जानते भी नहीं थे । इन आविष्कारों की सहायता से उन्होंने अपने अधिकारों को इस हद तक बढ़ा दिया है कि लोगों के लिए इनके विरुद्ध लड़ना असम्भव हो गया है । सरकार ने केवल असंख्य धन का अपने अधिकार में नहीं कर लिया है जा लाग से एकत्र किया जाता है, उनके पास केवल सुसंगठित सैन्य-दल ही नहीं है बल्कि उन्होंने अशिक्षित जनता को प्रभावित करने, अखबार तथा धार्मिक उन्नति एवं शिक्षा के समस्त साधनों को अपने हाथ में ले लिया है । और इनका ऐसा संगठन किया गया है, और वे इतने शक्ति संपन्न हो गये हैं कि सन् १८४८ ई० के बाद से यूरोप में क्रांति करने का क्या कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ है जिसमें सफलता प्राप्त हुई हो ।

(२)

य वैज्ञानिक आविष्कार एक विलकुल नई और हमारे समय क लोगों के लिए अद्भुत चीज है । नीरा और चगज या आदि महान् विनेता चाहे कितने ही शक्तिशाली क्यों न रहे हों, वे अपने राज्य की सीमा प्रांतों में होने वाले बलकों को दूर नहीं कर सकते । और अपनी प्रजा की शिक्षा, वैज्ञानिक तथा नैतिक और धार्मिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली मानसिक प्रवृत्तियों का नृत्व और संचालन कभी अपने हाथों में नहीं ले सकते । जब कि इन समय रूसिया पुलिस, गुप्तचरों का प्रबन्ध, प्रेसों का नियंत्रण, रेलवे, तार, टेलीफोन, फोटोग्राफी जैले किला बन्दी, प्रचुर धन धान्य एवं सेना आदि सभी साधन वर्तमान सरकारों के हाथों में रहते हैं ।

रूस की वह महान् धोखानिक राज्य क्रांति तो टॉल्स्टाय की मृत्यु के सात वर्ष बाद हुई । स०

इन सबका सगठन ऐसे ढंग से किया गया है कि अयोग्य से अयोग्य और मूर्ख से भी मूर्ख शासक (आत्म-रक्षा के भावों से प्रेरित होकर) भयकर-से भयकर प्राणित की तैयारी को रोक सकते हैं, और हमेशा बिना किसी विशेष उद्योग के खुली बगावत के उन नियत प्रयत्नों को दबा सकते हैं जो समय-समय पर विद्युत् हुए प्राणिकारियों की ओर से किये जाते हैं। इन लोगों के ऐसे प्रयत्नों से सरकारों की शक्ति और भी बढ़ जाती है। हम समय सरकारों के ऊपर नियंत्रण प्राप्त करने का करल एक उपाय है। और वह उपाय यह है कि सैनिक लोग, जो प्रजा में के ही आदमी हैं, यह समझ लें कि सरकारें लोगों के साथ कितना अन्याय और निन्द्यतापूर्ण व्यवहार करती हैं और प्रजा का कितना अधिक अनहित करती हैं, तथा उनका सहायता करना बन्द कर दें। परन्तु इस सम्बन्ध में भी सरकारों ने यह जानकर कि उनकी सारी शक्ति सेना में ही है, उसके संचालन और शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध कर लिया है कि किसी भी प्रकार का आन्दोलन और प्रचार करने में पौजे सरकार के हाथ से नहीं निकल सकते। कोई भी मनुष्य, जो सेना में नौकर है और निम्ने जादू का जैसा अमर रत्न धाली सैनिक शिक्षा, जो सैनिक व्यवस्था (discipline) के नाम से प्रसिद्ध है, प्राप्त हुई है, सना रहत हुए, फिर उनका राजनीतिक विश्वास चाहे कुछ भी क्यों न हो, अपने सेना नायक की आज्ञा नहीं टाल सकता। योग्य-वीर्य की अवस्था के किशोर सेना में भर्ती कर लिये जाते हैं और उन्हें सिध्दा धार्मिक शिक्षा दी जाती है, जइयाद पर मूर्खतापूर्ण देश भक्ति के भाव उनमें भरे जाते हैं। ऐसे सैनिक सेना से इन्कार नहीं कर सकते। निस प्रकार वे लड़के, जो स्कूलों में भेजे जाते हैं, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने से इन्कार नहीं कर सकते। सेना में भर्ती हो जाने पर ये मध्ययुवक, फिर उनका राजनीतिक विश्वास कुछ भी क्या न हो, कई शताब्दियों के अभ्यास से प्राप्त इस कौशलपूर्ण सैनिक शिक्षा की बदीलत एक ही माल के भीतर अधिकारियों के मुँह



विपरीत वे सदैव मानव-समाज की सामाजिक दुर्दशा का कारण रहे हैं और शय भी हैं। इसलिए जो शक्ति पहले किया समय लागा में उरसाह और भक्ति उत्पन्न करती थी आज अधिकाश और सर्वात्म मनुष्यों में केवल उदासीनता के भाव ही नहीं बरन् कभी-कभी द्वेष और और घृणा के भाव भी उत्पन्न करती है। य लोग, जो दूसरों की अपवा अधिक् बुद्धिमान् और समझदार हैं, अज समझते हैं कि जिस जुमापशी चटक-मटक से यह शक्ति परवर्धित है वह जल्लाद (फामी लगाने जाल) की लाल कमीज और मरमला पायनाम का छाड़ और कुछ भी नहीं है, जिनकी वजह से यह दूसरे कैदियों से भिन्न रहता है, क्योंकि उसने मूर और निच काम को अपने हाथ में ल लिया है।

लोगों में दिन-ब-दिन इस शक्ति के प्रति जो भाव बढ़ने जा रहे हैं, उ-ह शासक लोग भली भाँति समझते हैं और इसलिए उनकी इस शक्ति का आधार अब अभिहित राजत्व, सावजनिक निराचन अथवा शासकों के ज-म सिद्ध अधिकार के ऊपर नहीं किन्तु पूणतया दमन के ऊपर है। फलत इस पर ये लोगों का विश्वास उठ जाने के कारण शासकों को अधिकाधिक दमन करके राष्ट्रीय जीवन को कुचलना पड़ता है। इसका यह फल होता है कि लोगों में और भी अधिक असतोष फैला जाता है।

(४)

यह अजेय सत्ता अब विशेष अधिकारा, निर्वाचन अथवा प्रति निधित्व का राष्ट्रीय नींव के ऊपर नहीं किन्तु, नम्र बल प्रयोग के ऊपर ही ली रही है। साथ ही लोगों ने इस शक्ति में विश्वास करना और उसका सम्मान करना बन्द कर दिया है। अब वे यदि उसके आगे सिर झुकाते हैं तो मजबूर होकर।

विगत शताब्दी के ठाक मध्य-काल से यद्यपि सत्ता पर विजय प्राप्त करना तो कठिन हो गया, पर उसका प्रभाव बिलकुल जाता रहा। उसी समय से लोगों में इस भाव की जागृति हुई कि स्वतन्त्रता सत्ता से

भिन्न वस्तु है,—वह कल्पित और बनावटी स्वतन्त्रता नहीं निम्का उपदेश दमन के उपामकों की ओर से किया जाता है, और निम्के अन्दर उन्हीं के कथनानुसार मनुष्य को त्गड का भय दिखला कर दूसरा की आत्मा मानन के लिए बाध्य किया जाता है, किन्तु वह मच्ची स्वतन्त्रता, निम्का आशय यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपना बुद्धि के अनुसार कार्य कर सक और अपना जीवन बिता सक, चाहे ईक्स दे अथवा न दे, मेना में भती हो या न हो, अपन पद्दामी राष्ट्रों के साथ मित्रता रने अथवा उनका शत्रु बन। यह स्वतन्त्रता उम शक्ति के विपरीत है निम्क कारण थोड़े से मनुष्य शेष मनुष्य-समान पर शासन कर सकत है।

इस मत के अनुसार शक्ति को ईश्वरीय तथा महान् वस्तु नहीं है, जैसा कि पहले लोग समझा करते थे। वह समाजिक जीवन की ऐसी अनिर्णय शक्त भी नहीं है। यह ता उम अमस्कृत, बेदग बल प्रयोग का एक फल (परिणाम) मात्र है जो कुछ थोड़े से लोग दूसरों क ऊपर क्रिया करत है। यह मत्ता बुरी चीज है, फिर चाहे वह लुड, नेपालियन, मुलतान, पालमएट, कैरिनट, मन्दारिन, रागा, नगाव, मिकाडो अथवा और क्रिमा क हाथ में हो। इसमें सदा कुछ लोगों का शेष जनता पर अधिकार रहगा और उस पर अत्याचार भा होंग हा।

अत इस मत्ता का ही समय पहले नारा करना चाहिए।

परन्तु प्रश्न यह है कि मत्ता का अन्त किस प्रकार किया जाय और उसका अन्त हो जान पर मारी बातों की स्थिति किस प्रकार की जाय कि इस मत्ता क अन्त में लाग कहीं फिर से एक दूसरे पर पशुओं की तरह बल प्रयोग न करन लग जाय ?

सभी अराबक (राज्य की मत्ता न मानत वाल लोग इसा नाम से पुकारा जात है) एक स्वर से इस प्रश्न का उत्तर यों दत है कि यदि इस शक्ति का वास्तव में नाश करना है ता उसका अन्त बल-प्रयोग के द्वारा नहीं बरन् इस बालक ज्ञान प्रचार द्वारा किया जाना चाहिए

सत्ता दर असभ एक व्यवध और खराब चीन है । दूसरा प्रश्न यह है कि बिना सत्ता की सहायता क समाज का संगठन किस प्रकार किया जाना चाहिए । इसका उत्तर ये अराजकवादी भिन्न भिन्न रीति से दत्त है ।

मि० गॉडविन (थमोज), जिनका जीवन-काल १८वीं शताब्दी के अन्त और १९वीं शताब्दी के आरंभ काल में चलताया जाता है, और मि० प्राउडन (फ्रांसीसी) जिनका काय-काल इस अन्तिम शताब्दी के मध्य में था, पहले प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दते हैं—“सत्ता का साक्षर करने के लिए लोगों में ज्ञान का होना पर्याप्त है । सामाजिक भलाई [गॉडविन के मतानुसार] और न्याय [प्राउडन के मतानुसार] को सत्ता द्या देता है । यदि लोगों में इस भाव का प्रचार हा जाय कि सब जनिक भलाई और न्याय की प्राप्ति केवल शक्ति की अनुपस्थिति में ही की जा सकती है तो यह शक्ति अप से भाव नष्ट हा जायगा ।

दूसरे प्रश्न का अर्थान् 'बिना सत्ता के नवीन समाज की व्यवस्था किस प्रकार की जायगी और उत्तम शक्ति की स्थापना किस प्रकार की जा सकेगी' गॉडविन और प्राउडन दोनों यह उत्तर दत्त है कि जिन लोगों के हृदयों में सर्व-साधारण्य की भावना (गॉडविन के मतानुसार) और न्याय (प्राउडन के मतानुसार) के भाव विद्यमान हैं, वे अपने स्वभावानुसार सत्ता न्याय-युक्त जीवन अवश्य दृढ करेंगे ।

वैकोनिन और फ्रापाटकिन आदि यद्यपि इस बात को स्वीकार करते हैं कि सब साधारण में इस बात का ज्ञान हा जाना परमावश्यक और अत्यन्त लाभप्रद है कि सत्ता (पशु बल) एक हानिकारक और मानव उन्नति में बाधा डालने वाली वस्तु है, तथापि उसको मिटाने के लिए जो उपाय हा सकन है उनमें से वे प्राप्ति को आवश्यक मानते हैं चिमकी सैवारी करने के लिए बेलों का सलाह भी दत्त है । दूसरे प्रश्न के उत्तर में वे यह कहते हैं कि ज्यों हा शासन-संगठन और वस्तुओं के वैयक्तिक अधिकारकी बात गूढ हो जायगी त्यों ही, जैसा कि स्वाभाविक है, लोग स्वयं ही विवेक-युक्त, स्वतंत्र, और लाभप्रद जीवन-संबंधी शर्तों की

स्वीकार कर लेंगे और उन्हें अपना लेंगे।

मात्रम स्टनर (जमन) और मि० टकर (अमरिकन) सत्ता को कैसे नष्ट किया जाय, इस प्रश्न का लगभग वही उत्तर देते हैं जो दूसरे लोग दिया करते हैं। वे कहते हैं—सत्ता अपने आप नष्ट हो जाय यदि लोग यह समझ लें कि प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तिगत स्वाध ही मनुष्यों के कार्य का कारा और सच्चा पथ प्रदर्शक है। वे यह भी कहते हैं कि सत्ता उस समय अपने-अपने नष्ट हो जायगा, जब लोग समझ सकेंगे कि पशु-बल मानव-नाशन के इस प्रधान अंग का पूर्ण प्रदर्शन करने में कबल बाधक ही होता है, क्योंकि जमी दूज में न ठो काइ उसको फिर मुकाबेगा और न, जैसा कि मि० टकर का कहना है, उसमें किसी प्रकार का कोइ हिस्सा ही लेगा। दूसरे प्रश्न के संबंध में उनका उत्तर यह है कि इस शक्ति की आवश्यकता और उसका मिथ्या विश्वास में मुक्त होने पर और केवल अपने व्यक्तिगत स्वाध का ध्यान रखते हुए काम करने वाले मनुष्य अपने-अपने जीवन का ऐसा व्यवस्थित बना लेंगे जो बिलकुल उचित और प्रत्येक मनुष्य के लिए लाभ-प्रद होगा।

एक बात में वे सभी पुरुष एकमत हैं और वह ठाक भी है कि शक्ति की दूना शक्ति नहीं है। क्योंकि शक्ति से एक शक्ति का नाश होने पर दूसरी शक्ति फिर भी बनी ही रहगी, शक्ति का नाश तो मनुष्यों के हृदय में इस सत्य ज्ञान का प्रकाश टालने में हो सकता है कि शक्ति (पशु-बल) एक स्वयं और हानि-कारक वस्तु है, और लोगों को न उम्मे मानना चाहिए और न उसमें किसी प्रकार का कोइ हिस्सा लेना चाहिए। यह सत्य ऐसा है जो कभी अन्याया नहीं हो सकता। शक्ति का नाश कबल लोगों में रिपेक-पूर्ण ज्ञान का संघार होने से ही हो सकता है। परन्तु यह ज्ञान कैसा जाना चाहिए ? प्रति-वादियों का विश्वास है कि इस ज्ञान का आधार मय-साधारण की भलाई, न्याय, उन्नति अथवा मनुष्यों के व्यक्तिगत स्वाध-सम्बन्धी विचारों के ऊपर जाना चाहिए। परन्तु कहना न होगा कि ये सारी बातें जमी हैं जो एक-दूसरे से सम्बन्ध

नहीं हैं। सर्व-साधारण की भलाई, न्याय, उन्नति अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ की परिभाषा भी लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। अतएव हमें तो यह अमम्य प्रतीत होता है कि जो लोग एक-दूसरे से सहमत नहीं हैं, और जो भिन्न भिन्न उद्देश से शक्ति (पशु बल) का विरोध करते हैं वे कभी उस शक्ति को मिटा सकना जिसकी बड़ इतनी बनी हुई है और जिसकी इतनी योग्यता के साथ रक्षा की जा रही है। इसके अतिरिक्त यह अनुमान कर लेना और भी निराधार है कि सब-साधारण की भलाई, न्याय अथवा उन्नति सम्बन्धी नियमों के विचार मात्र धारण करने से वे अध्याचार मुक्त हो जायें जो कि सब-साधारण की भलाई के खातिर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का छोड़ना नहीं चाहते, पारस्परिक स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं करेंगे और न्याय पूर्ण जीवन व्यतीत करने में लग जायेंगे। मोक्ष स्टनर और टकर का यह उपयोगितावादी और व्यक्तिवाद सिद्धान्त (कि प्रत्येक मनुष्य के अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का ही ध्यान रखने से सब लोगों में उचित सम्बन्ध स्थापित हो सकता है) केवल अस्थायी ही नहीं परन्तु उन बातों के मर्यादा प्रतिकूल है जो वस्तुतः अथ तक हुई हैं और अथ भी हो रही हैं।

अतः यद्यपि प्रान्तिवादी मानते हैं कि सत्तावाद के विनाश का अगर कोई उपाय हो सकता है तो वह आध्यात्मिक ही हो सकता है, तथापि यह उनके पास नहीं है क्योंकि उनकी जीवन-कल्पना पार्थिव और धर्म निरुद्ध है। उनकी सारी बातें अनुमान पर ही निर्भर हैं। और अपने आदर्श को प्राप्त करने का समुचित साधन न बता सकने के कारण पशु-बल और दमन के मर्यादों को प्रान्तिवादियों द्वारा प्रतिपादित सच्चे सिद्धान्तों को मानने से इंकार करने का अपसर मिल जाता है।

इस आध्यात्मिक अर्थ को लोग बहुत पहले से जानते हैं। इससे मर्यादा सत्तावाद का नाश किया है और जिन लोगों ने इसका प्रयोग किया है उन्होंने पूरा और शाश्वत स्वाधीनता प्रदान की है। उपाय

बिल्कुल सीधा है—मनुष्य अपना जीवन धार्मिक बनावे। वह अपने इस सामारिक जीवन को, अपने संपूर्ण अनन्त जीवन का एक आशिक प्रदर्शन-मात्र समझ, और अपने इस जावन का अनन्त जीवन के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह समझ कि इस अनन्त जीवन के नियमों का पालन करने में ही उसका बड़ा से-बड़ा कल्याण है। वह उन नियमों का आदर मनुष्य के बनाये नियमों की अपेक्षा अधिक करे, और उन्हीं का पालन करे।

केवल ऐसे ही धार्मिक विश्वास, जो समस्त मनुष्य-समाज के लिए एक ही प्रकार के जीवन का विधान करता है और जो सत्तावाद के आधिपत्य को स्वीकार करने और उसमें भाग लेने का तीव्र विरोध करता है, सत्तावाद का सचमुच नाश हो सकता है।

केवल ऐसे ही जावन को आदर्श मानने से मनुष्यों का कल्याण हो सकता है। इसी के द्वारा व बिना बल प्रयोग का आश्रय लिये विवेक पूर्ण और न्याय युक्त जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

वैसा आश्चर्य है कि लोगों को इस बात का विश्वास होने पर ही कि वर्तमान समय का सत्ता अनेक है और शक्ति के द्वारा इस समय वह नष्ट नहीं की जा सकती, इनकी समझ में यह स्वतः प्रमाणित और बिल्कुल सत्य बात आई कि शक्ति और उससे उत्पन्न होने वाली सारी बुराई मनुष्यों के कुत्सित जीवन की केवल परिणाम मात्र है, और इसलिए इस शक्ति का तथा उससे उत्पन्न होने वाली सारी बुराइयों का अन्त करने के लिए लागू अपने जीवन का अच्छा और सदाचार-मय बनावे।

और, सुबह का भूला भटका शाम को तो घर पर आ गया। अब उन्हें एक बात समझ लेना है। यह यह है कि लोगों के जीवन को अच्छा और सदाचार-मय बनाने का एक-मात्र उपाय, जो स्वाभाविक हो और जिसे अधिकांश जन समाज भी आसानी से समझ लें।

केवल ऐसी ही धार्मिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार से लोग उस

आदर्श को प्राप्त कर सकते हैं जिसका इस समय उनके अन्तःकरण में ध्यात्रिर्भाव हुआ है और जिसके लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त सत्ता को मिटाने और शक्ति की सहायता के बिना मनुष्यों में सदाचार-मय जीवन स्थापित करने के लिए दूसरा कोई उपाय करना केवल अपने परिश्रम का "यर्थ" यथ करना है। इसमें हम अपने उस लक्ष्य के निकट नहीं पहुँच सकेंगे, जिसकी ओर पहुँचने के लिए लोग प्रयत्न कर रहे हैं वरन् उससे और भी दूर हट जायेंगे।

(५)

सज्जनों यही बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ। आप सत्यशील हैं और आपका हृदय शुद्ध है, इसीलिए तो आप इस स्वाधमय वैयक्तिक जीवन से असंतुष्ट होकर अपनी शक्ति को अपने भाइयों की सेवा में लगाना चाहते हैं। यदि आप सरकारी कामों में हिस्सा लेते हैं अथवा उसमें हिस्सा लेने के इच्छुक हैं और इस उपाय से लोगों की सेवा करना चाहते हैं, तो इस बात पर जरा विचार कीजिए कि क्या प्रत्येक सरकार पशु बल के सहारे टिकी हुई है अथवा नहीं? अपने आपसे यह प्रश्न करने पर आपको मालूम होगा कि ससार में एक भी सरकार ऐसी नहीं है जो बल प्रयोग, डाकाजनी और हत्या न करती हो, उनके लिए तैयार न रहती हो और इन्हीं बातों के ऊपर अपना अस्तित्व न बनाये हो।

अमेरिका के एक लेखक—मि० थारो—ने एक सुन्दर लेख लिखा है। उसका विषय है "सरकार को आज्ञा न मानना मनुष्य का कर्तव्य क्यों है?" उसमें उन्होंने यह बताया है कि संयुक्त राज्य (अमेरिका) की सरकार को एक डॉलर का टैक्स देने से उन्होंने कैस इन्कार कर दिया। अपनी इस इकारी का कारण उन्होंने यह बतलाया कि मैं अपने एक डॉलर से जेमा सरकार के कामों में कोई सहायता करना नहीं चाहता जो अफ्रीका के हबशियों को गुलाम बनाय रखने की इजाजत देती है। क्या ठीक ऐसा ही भाव संयुक्त-राज्य अमेरिका, जैसे समुच्चत

राज्य के नागरिक का अपनी सरकार का उन करतूतों के सम्बन्ध में नहीं हो सकता और न ही होना चाहिए, जो क्यूबा और फिलीपाइन्स में हा रही है ? हज़ारियों के भाव में होने वाले व्यवहार और चानियों के दश निकाले के सम्बन्ध में क्या एक अमेरिकन के चित्त में यही भाव उत्पन्न नहीं होने चाहिए ? अथवा इंग्लैण्ड का नागरिक अपनी-सम्बन्धी नीति और बेशर लोगों के भाव हान वाले अमानुषिक व्यवहार के सम्बन्ध में अपनी सरकार के प्रति ऐसा ही भाव नहीं धारण कर सकता और उस न करना चाहिए ? अथवा क्या फ्रांस का नागरिक फ्रांस की सरकार के सम्बन्ध में भी ऐसा ही भाव नहीं धारण कर सकता निम्ने सैनिकवाद का हाँचा दिग्गकर लोगों पर आतक जमा रखा है ?

इंग्लिष् सरकारों के नग्न स्वरूप को एक बार पहचान लेने पर कोई भी मन्त्रा मनुष्य, जो अपने दशवामी भाव्यों की सेवा करना चाहता है, उनमें किसी प्रकार का कोई हिस्सा नहीं ले सकता। बशर्त कि वह यह न मानता है कि साधन की परित्रता का प्रमाण साध्य की मिद्धि ही है। परन्तु ऐसे काय म किसी का उपकार नहीं हो सकता, न सेवकों का और न सवितों का।

बात मिलकुल साधा है। सरकारका अधीनता स्वीकार करके और उसके कानून का सहायता द्वारा आप लोगों के लिए अधिक स्वतंत्रता और अधिकार लना चाहते हैं न ? परंतु लोगों की स्वतंत्रता और अधिकार सरकार तथा, सामान्यतया, शासक-समाज की सत्ता के विरोधी अनुपात में है। जितनी ही अधिक स्वतंत्रता और अधिकार लोगों को प्राप्त होंगे उतना ही कम शक्ति और लाभ उनसे सरकार को होगा। और इस बात का सरकारें खूब अच्छी तरह जानती हैं। उनके हाथ में सत्ता हाने के कारण वे लोगों को खूब आनादी के साथ मनमानी बातें बकने देती हैं और कुछ थोड़े-से मामूली सुधार भाग देती हैं, जिससे उनकी उदारता का परिचय मिलता रह। परंतु निम्न समय कोई ऐसा आन्दोलन उठाया जाता है जिससे शासकों के विशेषाधिकार ही नहीं

वरन् उसका अस्तित्व (हस्ती) भा खतर में पड़ जाता है तो वे बल प्रयोग द्वारा इन आन्दोलनोंका दबाकर आन्दोलन करने वालों को फौरन गिरफ्तार कर लेते हैं। इसलिए सरकारी शासन की सहायता का, अथवा पार्लमेंट के द्वारा लोगों की सेवा करने के थापक मारे प्रयत्नों का परिणाम बचल यह हांगा, कि आप अपने इसी काय से शासकों की शक्ति को और भी अधिक बढ़ा देंगे और जितना ही अधिक आप में इस काम की सच्ची लगन होगी उतना ही अधिक आप जानत हुए अथवा अनजान में, इस शक्ति में भाग लेने क दोषी हानगे। यही बात उन लोगों के सम्बन्ध में है जो लोग वर्तमान शासन व्यवस्था क द्वारा जनता की सेवा करना चाहत हैं।

यदि, हमके विपरीत आप उन सच्चे हृदय वाले लोगों में से हैं जो प्रान्तिकारी साम्यवादी आन्दोलनों के द्वारा राष्ट्र की सेवा करना चाहत हैं (मनुष्य को कभी सतोंप न दन वाले पार्थिव सुखोंके पीछे दौड़ने क लिए जो आदर्श प्रेरणा करता है उसकी तुच्छता क विषय में विशेष कहन की जरूरत नहीं) तो आपको उन साधना पर भी विचार कर लना चाहिए जो आपकी अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्राप्त हैं। ये साधन सबप्रथम तो नीति विरुद्ध हैं, इनमें कूठ, दगाबाजा, जार जत्त और हत्या भरी पड़ा है दूसर इन साधनों से किसी भी प्रकार उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। अपने अस्तित्वकी रक्षा करने वाला सरकारों का बल और चौकआपन इस समय इतना ज्यादा है कि छल कपट, धोखेबाजी अथवा सरती स उनका मिटना केवल असम्भव ही नहीं ह वरन् ये चीजें उन्हें हिला तब नहीं सकतीं। जितने भी प्रान्तिकारी आन्दोलन किये जाते हैं उन सबके कारण सरकारों का यह बलताने का फिर से मौका मिल जाता ह कि उनका पशु-बल एक बढ़ी चीज है। और इसस उनकी शक्ति और भी बढ़ जाती ह।

लेकिन अगर हम असम्भव बात को भी सम्भव मान लें—अर्थात् यह मान लें कि हमारे समय में भी प्रान्तिकारी आन्दोलन को सफलता

प्राप्त हो सकती है, तो सबसे पहले, हम इस बात का धारा कैसे कर लें कि परम्परागत प्रथा के विरुद्ध एक शक्ति पर विजय प्राप्त करने वाली दूसरी शक्ति लोगों की स्वाधीनता को बढ़ा देगी और विजय प्राप्ति द्वारा उसने जिस शक्ति का न्याय प्रहण किया है, उसकी अपेक्षा अधिक उत्तर और ज्वाला होगी ? दूसरे यदि सामान्य बुद्धि और अनुभव के विरुद्ध, यह भा सम्भव हो कि एक शक्ति को मिटाकर दूसरा शक्ति लोगों को ऐसा स्वतंत्रता प्रदान कर सकेंगे जो जीवन का उन अवस्थाओं को स्थापित करने के लिए आवश्यक है, जिन्हें वे अपने त्रिण अत्यधिक लाभ प्राप्त समझते हैं, तब तो हमें यह भा मान लेना होगा कि स्वाधीनता वैयक्तिक जीवन व्यतात करने वाले लोग आपस में पहले का अन्त अधिक अच्छी अवस्था उत्पन्न कर सकेंगे ।

हम मानते हैं कि दादाजियों का एक महारानी उत्तर-से-उदार शासन की स्थापना करता है । वह परिश्रम के साधनों को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाने का बात को भी न्यायकारक कर लेती है । फिर भी शासन का कार्य ठीक तरह से चलाने और परिश्रम के साधन किन्हीं व्यक्ति-विशेष की निजी सम्पत्ति न बनाये जा सकें इसी बातों का ध्यान रख करन के लिए किमी-न किमी को अपने हाथों में मत्ता ता लेनी हा पड़ेगा । परन्तु निम्न समय तक ये लोग अपने-आपका दादाजिमा सम्भल रहेंगे और उनके जीवनानुक्रम में काठ परिवर्तन न हागा, तब तक यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि—यद्यपि हमारे ही रूप में क्यों न सही—याद स दादाजिमा दूसरों के ऊपर वैसा हा अन्याय और बल-प्रयोग करत रहेंगे जैसा कि शासन-व्यवस्था के अभाव में और परिश्रम के साधनों का बिना राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाय किया जा सकता है । साम्यवादी दृष्टि पर अपने आपको सगठित करने से पहले दादाजियों को चाहिए कि वे प्रजा-सीडन और रक्षकता का तरफ से अपना तद्विषय का ध्यान लें । ठीक यही बात यूरोप के लोगों के लिए भी आवश्यक है ।

हम चाहते हैं कि लोग एक-दूसरे का बिना कुछ नियम और सुधारों

परस्पर प्रेम-मय जीवन व्यतीत कर सकें। पर यह पशु बल अथवा किसी सत्त्वा द्वारा नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो ऐसी सुनीति पूरा परिस्थिति की आवश्यकता है जिसके अनुसार लागू कर्मों के दबाव में नहीं, बल्कि अपने अन्तःकरण से ही दूसरा क प्रति वैसा व्यवहार करें जैसा कि वे चाहते हैं दूसरे लोग उनके साथ करें। यह असम्भव नहीं, ऐसे लोग अत भी मौजूद हैं। वे धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों में विद्यमान हैं। ऐसे लोग वाम्त्व में पशु-बल द्वारा रचित कानून की सहायता नहीं लेते। वे बिना एक-दूसरे को कष्ट पहुँचाये अत भी समार में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अत इस समय हमारा इसाड समान का कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें चाहिए कि वे इसाड क संदेश को समार के कोने-काने में पहुँचावें। इसाड का संदेश यह नहीं है कि वर्तमान अत्याचारी सरकारों की सत्ता को स्वीकार कर धर्म प्रार्थों में लिखा क्रमशः रोज सुबह-शाम या हर रविवार मंत्रोच्चार के साथ करते जाओ। इसाड धर्म यह करने का आदेश नहीं करता न इसके प्रचार की जरूरत है कि आओ, ईसा का शरण गहो वह तुम्हें पापों से बचायेगा। प्रचार उह इस बात का करना चाहिए कि लागू सरकारों के काम में को भाग न लें उनका सारी मांगों का अस्वीकार कर दें। क्योंकि य सारी मांगें—एकसिरे से लेकर दूसरे सिरे तक सच्चे ईसाई धर्म के समथा विरुद्ध हैं। और यद बाल ऐसी ही हो तो यह बात त्रिलकुल स्पष्ट है कि जो लोग अपने पड़ोसियों की सेवा करने क इच्छुक हैं, उन्हें अपनी शक्ति नवीन रूप से समान सगठन करने में नहीं, वरन् अपने तथा दूसरे लोगों के आचरण में परिवर्तन करने और उसे शुद्ध एवं पवित्र बनाने में लगानी चाहिए।

जिन लोगों का काय-क्रम दूसरा है व प्राय यह समझते हैं कि मनुष्यों के आचरण-सम्बन्धी प्रिश्वास और रहन सहन के ढंग आदि में साथ ही साथ उन्नति होती है। परन्तु एसा रयाल करके वे एक कार्य को कारण और कारण को अथवा उससे सम्बन्ध रखन वाली किसी बात को कार्य समझ बैठने की गलती करते हैं।

मनुष्यों के चरित्र और जीवन सिद्धान्तों में परिवर्तन होने से लोगों के रहन-सहन में अपने आप परिवर्तन ही जाता है रहन-सहन के ढंग में परिवर्तन होने से मनुष्यों के चरित्र और जीवन सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं होता। मनुष्यों को सुधारने का यह गलत तरीका है। इससे तो उल्टा मनुष्य का ध्यान मिथ्या और कल्पित स्रोत की ओर आकृष्ट हो जाता है। अतः लोगों के चरित्र और जीवन सिद्धान्तों में परिवर्तन करने की आशा से उनके रहन-सहन के ढंग में परिवर्तन करना व्यर्थ है। हमसे अपने निश्चित ध्येय की तरफ पहुँचने की अपेक्षा हम अनजान में दूसरी ही तरफ भटक जायेंगे।

यह बात बिलकुल साफ है। फिर भी लोग गलती कर जाते हैं। इसलिए कि अपना सुधार करने की अपेक्षा पशु बल की सहायता से दूसरों का मजदूरन अपनी इच्छा के अनुकूल झुका लेना कुछ आसान है। और इसका प्रभाव भी वैसा ही अमोत्यादक है।

परन्तु अपने सुधारको, अगर तुम सच्चा सुधार चाहते हो तो इस गलती से उचना। नहीं तो तुम्हारा सारा त्याग, सारा बलिदान और तुम्हारा सारा कार्य मिट्टी हो जायगा निम्नलिखित लिए तुम अपने प्राणों की भी पर्वाह नहीं करते।

(६)

लोग कुछ सच्चे और कुछ उनावटी क्रोध में आकर कहते हैं—
“लम्बिन जब हम देखते हैं कि हमारे चारा और लोग दुःख से पीड़ित हैं और नाना प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं, तो शान्ति के साथ इसाट धम का उपदेश और प्रचार करने से हमारी आत्मा को सन्तोष नहीं होता। हम बहुत जल्दी उनकी सवा करना चाहते हैं। इसके लिए हम अपने परिश्रम का, यहाँ तक कि अपने जीवन तक का, बलिदान करने को तैयार हैं।”

इन लोगों को मरा उत्तर यह होगा कि तुम कैसे जानते हो कि तुम्हें ठीक उसी तरीके से लोगों की सवा करने की आत्मा मिली है जिसे

तुम सबसे अधिक उपयोगी और व्यवहाय समझते हो ? जो कुछ तुम कहते हो, उससे तो सिर्फ इतना पता चलता है कि तुम यह बात पहले से ही तय कर चुके हो कि धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए तुम मनुष्य-समाज की सेवा नहीं कर सकते, तुमने तो मानो निश्चय कर रखा है कि सच्ची सेवा उस राजनीतिक कार्य द्वारा ही हो सकती है जो तुम्हें सत्रम अधिक आकर्षित करता है ।

सभी राजनीतिज्ञ इसी तरह सोचते हैं और उन सबकी बातें परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध हैं और इसलिए यह बात निश्चय है कि वे सभी सही नहीं हो सकते । क्या ही अच्छा होता यदि प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार जिस प्रकार चाहेता, लोगों की सेवा कर सकता ? पर बात एभी नहीं है । लोगों की सेवा करन और उनकी दशा सुधारने का क़रल एक ही उपाय है । यह उपाय है उम शिखा का उपदेश करना और उसके अनुसार कार्य करना जिसमे मनुष्य में अपने आपको सुधारने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । एक सच्चा धार्मिक पुरुष, जो हमेशा मनुष्यों के बीच में रहता है, उनसे द्वेष नहीं करता, अपनी धारम-शुद्धि इसी में समझता है कि वह अपने तथा दूसरे लोगों के बीच उत्तम और अधिकाधिक प्रेममय सम्बन्ध स्थापित करे । मनुष्यों में प्रेम पूण सम्बन्ध स्थापित हो जाने से उनकी साधारण अवस्था का अत्रय सुधार होगा, यद्यपि इस उन्नति का रूप लोगो पर अमकट ही रहता है ।

यह सच है कि सरकारी पार्लमैण्ट अथवा प्रातिकारी आन्दोलनों द्वारा लोगों की सेवा करने में हम पहले से ही उस फल का अनुमान कर सकते हैं जिस हम प्राप्त करना चाहते हैं, और साथ ही इसके ध्यान-मय और विलासिता पूण जीवन की समस्त सुविधाओं से लाभ उठा सकते हैं, और भारी ख्याति, लोगों की स्वीकृति और अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं । यदि उन लोगों का जो ऐसे कामों में हिस्सा लेते हैं, किसी समय कष्ट भी उठाना पड़ता है, तो लोग उस रिजय की आशा से उसे, भुला देते हैं जो कि वे सोचते हैं, उन्हें मिलेगी ।

सैनिक-काय में कष्ट तथा मृत्यु की और भी अधिक सम्भावना है, फिर केवल ऐसे लोग उसे पसन्द करते हैं जिनमें बहुत थोड़ी नैतिकता है और जो स्वाथ-मय वैयक्तिक जीवन व्यतीत करने वाले हैं।

दूमरी और मदाचार-युक्त धार्मिक आचरण ऐसी वस्तु है जिसका परिणाम हमें झूठ नहीं दिखाई देता। दूमर यह आन्दोलन चाहता है कि लोग बाहरी सफलता का परित्याग कर दें। इसमें अच्छा प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त होना तो दूर, परन्तु वह लोगों को सामाजिक दृष्टि से नीची-से-नीची स्थिति को पहुँचा देता है—उन्हें अपमान और दण्ड का ही नहीं, बल्कि अत्यन्त निर्दयतापूर्ण दुःखों और मौत तक का शिकार बनाता है।

इस प्रकार, इस समय जब कि आम तौर पर लोगों को सेना में जबरदस्ती भर्ती करके 'उन्हें सैनिक बनाकर यह अपराधपूर्ण हत्या का काम करने को कहा जा रहा हो, धमाचरण मनुष्य को इस बात का आशंका करता है कि वह उन तमाम मज्जाओं को बर्दाश्त करे जो सैनिक-सेवा अस्वीकार करने पर सरकार उमेद। इसलिए, धमाचरण बहुत कठिन है, पर यही मनुष्य को मर्जी स्वतंत्रता का ज्ञान कराता है और मनुष्य को इस बात का विश्वास दिलाता है कि वह वही काम कर रहा है जो करना चाहिये।

अतएव, धमाचरण ही वास्तव में एक सामाजिक चान है। क्यों कि इसमें केवल उस निधेयम की मिद्धि हा नहीं होती वरन् साथ-हा साथ और एक बिलकुल स्वाभाविक और माधारण ढंग से उन सारी बातों का भा प्राप्ति हा जाती है जिनके लिए समान-सुधारक लोग ऐसी कृत्रिम रीति से प्रयत्न करते रहते हैं।

इस प्रकार मनुष्यों की सेवा करन का केवल एक हा उपाय है और

अनिवार्य सामाजिक सेवा का-कानून यूरोप के कानूनों में महा युद्ध के पहले-पहल तक था।

यह यह कि मनुष्य शुद्ध और सदाचार-मय जीवन व्यतीत करे। यह उपाय केवल खयाली उपाय नहीं है—जैसा कि वे लोग समझते हैं जिनको इससे कोई नकद लाभ नहीं पहुंचता। हा, इसमें अतिरिक्त जितने भी दूसरे उपाय हैं वे सभी खयाली हैं, जिनके द्वारा माधारण अशिष्ट जनता को नेता उन्हें उस एक-मात्र सच्चे उपाय की ओर से हटाकर एक धनाढी और मूठे माग की ओर प्रलोभन देकर लगा देते हैं।

(७)

कुछ जल्दवाज लोग पूछते हैं—यदि इसी मार्ग से मनुष्य का कल्याण होगा तो यह तो बताना कि वह कल्याण होगा क्या ?

क्या ही अच्छा होता अगर हमें अपने सुकर्मों का फल जल्दी मिल जाता ? परन्तु यात यह है कि सुकर्म बहुत धार धारे फूलते फलते हैं। आखिर बीज को उगाने, उसके डाल-पत्तियाँ आने, उसे फूल लगाने आदि में कुछ देर तो लगेगी ही। तब कहीं फल होगा।

मनुष्य जमीन में डालिया गाड़ सकता है, और कुछ देर तक वे जगल-सी प्रतात भी हामी परन्तु वे ऊर्ध्व असली जगल को बराबरी कर सकती हैं ? इमी प्रकार थोड़ी देर के लिए ऐसा प्रबंध किया जा सकता है, जसा कि सरकारें किया करती हैं, कि समाज के अन्दर सुख-वस्था है, परन्तु ऐसी कृत्रिमता से सच्ची व्यवस्था की भी सम्भावना नष्ट हो जाती है। एक तो एक अच्छी चीज की सुरी नकल करके अच्छी चीज के प्रति वे लोगों में अंधा उत्पान कर देते हैं। दूसरे, यह नकली व्यवस्था केवल शक्ति (पशु बल) की सहायता से स्थापित की जाती है, और शक्ति शासक और शासित दोनों को कुण्ठित बना देती है। इस लिए सच्ची सुख-वस्था की बहुत कम आशा रह जाती है।

इसलिए एक आदर्श को प्राप्त करने में जल्दवाजी करने से बड़ी नि होती है। उससे सफलता मिलना तो दूर, उलटे सफलता मिलती

भी हो तो उसमें बाधा पड़ जाती है।

अतएव इस प्रश्न का उत्तर कि—बिना बल प्रयोग के मानव-समाज का सुसंगठन शीघ्र हो सकेगा अथवा नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि साधारण जनसमान के शक्ति, जो सच्च हृदय से लोगों की भलाई चाहत है, इस बात को शीघ्र समझ लें कि वे अपने आदर्शों से ठीक उलट दिशा में जा रहे हैं। पहले उन्हें इन बातों को छोड़ना होगा। अर्थात् पुराने ढकोमलों और मिथ्या विश्वासों को उन्हें छोड़ना होगा। शुद्ध धर्माचरण को स्वीकार करना होगा और लोगों की शक्ति को सरकार की सहायता और क्रान्ति तथा साम्यवाद की उपामना की ओर लगाने से इनकार करना होगा। यदि वे लोग, जो मन्त्रमुक्ता शुद्ध हृदय के साथ अपने पदोन्नतियों की सेवा करना चाहत हैं, केवल इतना समझ लें कि राज्य के समर्थकों और क्रान्तिवादियों के बतलाये हुए समाज-संगठन के उपाय प्रिलब्ध यथ और निष्फल हैं—यदि वे केवल इतना समझ लें कि लोगों को उनका इस अनुमानों से मुक्त करने का उपाय उनके हाथों में है, अर्थात् केवल यह कि लोग स्वयं स्वाध्याय और नास्तिकों का मा जावन व्यतीत करना चाहें, परस्पर आनृ-भाव के साथ धार्मिक जीवन ध्यतात करन लग जाय, और यदि वे इस सबसे बड़े और आन्ति नियम को अपने जीवन का एकमात्र सिद्धान्त बना लें कि “मनुष्य को दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि वह चाहता है दूसरे उससे साथ करें—तो हमारे रहन-सहन का यह सारा ऋण जा बुद्धि विन्दु पथ निदयतापूर्ण है, बड़ी शीघ्रता के साथ बदल जायगा, और उसके स्थान में लोगों के नवीन रिचारों और चान के अनुसार नवीन रहन-सहन के ढंग का नाम हागा।”

जरा विचार तो कीजिए, इस समय राज्य-समस्या—जिसके जीवन की अवधि आवश्यकता से अधिक बढ़ गई है—तथा क्रान्तियों से उसकी रक्षा में कितनी अधिक और उत्तम बुद्धि व्यय की जा रहा है ? कितने

उत्साही युवा पुरुष भ्रान्तिकारी आन्दोलनों में, राज्य के साथ में असम्भव सप्राप्त करने में अपनी शक्ति का व्यय कर रहे हैं और कितनी शक्ति साम्यवादी सिद्धान्तों की व्यय परीक्षा में व्यय की जा रही है। इन सब बातों से उस कल्याण की प्राप्ति में विलम्ब ही नहीं हो रहा है, वरन् वह असम्भव हो रही है जिसके लिए सारा मनुष्य-समाज उद्योग कर रहा है। क्या ही अच्छा हो, यदि व सभी मनुष्य, जो अपनी शक्ति को इस प्रकार व्यय कर रहे हैं और कभी-कभी उससे अपन पढ़ी सियों को हानि भी पहुँचा रहे हैं, अपनी इस शक्ति को उस काम में लगावें जिससे सामाजिक जीवन के अच्छे होने की सम्भावना है जिससे अपने अर्थ करण की शुद्धि हो।

एक मनुष्य नये मजबूत सामान से कितनी धार नया मकान बनाने में समर्थ हो सकेगा, अगर वह भारी मेहनत, जो पुराने मकान की मरम्मत में खर्च की गई है और अब भी की जा रही है दृढ़ता और होशियारी के साथ नये मकान के लिए मसाला तैयार करन और उस मकान क बनान में खर्च की जाय। हा यह बात स्पष्ट है कि नया मकान कुछ खास खास आदमियों के लिए इतना आराम और सुभीत का न होगा जितना कि पुराना था, पर निस्सन्देह वह पुरान की अपणा अधिक मजबूत और टिकाऊ होगा, और उसमें उन सुधारों की भी पूर्ण सम्भावना होगी जा केवल कुछ गाम-ग्रास आदमियों के लिए ही नहीं बल्कि सभी आदमियों के लिए आवश्यक है।

इसलिए यहा पर मैंने जो कुछ भी कहा है, वह बिलकुल शुद्ध, सर्व साधारण की समझ में आने योग्य और अखण्डनीय सत्य है। यही कि लाग भ्रय अच्छे घनेगे अपनी आमा को पत्रिन्न रखेंगे तभी हमारा सामाजिक जीवन भी सुखमय और जीने योग्य हो सकेगा।

लोगों को अच्छे जीवन की ओर प्रवृत्त करने का केवल एक ही माग है, अर्थात् यह कि समझदार मनुष्य स्वयं शुद्ध और सदाचार-मय

जीवन व्यतीत करें। इसलिप जो लोग मनुष्यों में शुद्ध और सदाचार-मय जावन का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे पहल खुद अत करण की शुद्धि करें—उस शत को पूरा करें जो गडबिल में इन शब्दों में प्रकट की गई है।

“अपने परम पिता क समान शुद्ध और पूर्ण बनो।”

स्वदेश प्रेम और मरम्भार

(१)

मैं पहले कई बार अपना यह विचार प्रकट कर चुका हू कि स्वदेश प्रेम का भाव इस समय बिलकुल अस्वाभाविक, विवेक शून्य और हानिकारक है, और उन तमाम बुराइयों का कारण हो रहा है जिससे मनुष्य-ममज्ञ दुःख पा रहा है और ग्राहि ग्राहि कर रहा है इसलिए, इस भाव को फैलाने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि इस समय किया जा रहा है, बल्कि, इसके विपरीत, उन सभी उपायों से दबाना और उनकी जड़ ग्योद फेंकना चाहिए जो विवेकवान् और बुद्धिमान् मनुष्यों को प्राप्त हो सकते हैं। तथापि आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि एक इसी भाव से प्रेरित होकर सारे ससार में सेनाओं का संगठन किया जा रहा है, और बड़े-बड़े युद्ध लड़े जा रहे हैं, निम्नसे लोगों का सत्या नाश हो रहा है। मेरी ये सारी दलीलें, जिनमें यह बतलाया गया है कि यह स्वदेश प्रेम कितना भ्रम पूर्ण, इतिहास विरुद्ध और हानिकारक है, या तो अनसुनी कर दी गई हैं या जान-बूझ कर उनको गलत समझा गया है। कुछ लोग यह विचित्र और अपरिवर्तनीय उत्तर देते हैं कि केवल कुत्मित स्वदेश प्रेम ही बुरा है, परन्तु वास्तविक और उत्तम स्वदेश प्रेम बड़ा ही ऊँचा और मुनीति पूर्ण भाव है, जिसकी निन्दा करना मूल्यता ही नहीं बरन् दुष्टता है।

कोई यह बताने का ऋष्ट नहीं करता कि यह वास्तविक और उच्च

कोरि का स्वदेश प्रेम क्या है, यदि इस विषय में किसी ने पूछा है तो उसमें इस विषय का स्पष्टाकरण नहीं होगा कि स्वदेश प्रेम चीन को ही स्वदेश प्रेम की उपाधि दी जाती है किन्तु स्वदेश प्रेम की कोई भी बात पाई नहीं जाती और जिसके कारण स्वदेश प्रेम को इतने कठोर मनुष्य भोगन पड़ते हैं।

माधारणत यह कहा जाता है कि अमरीकी और रूस के स्वदेश प्रेम अपने-अपने अर्थों में अथवा राज्य के लिए प्रेम वास्तविक स्वदेश की अभिलाषा करता है निम्न दूसरे-दूसरे बातों के लिए प्रेम का बाधा न पड़े।

अभी हाल में एक अग्रज के साथ वतमान युद्ध के विषय में बातचीत करते हुए मैंने उनसे कहा कि युद्ध का वास्तविक कारण लाभ नहीं, जैसा कि प्रायः कहा जाता है, किन्तु स्वदेश प्रेम है। इसका नमूना अग्रजों की जाति है। यह अग्रज महाराज मुझसे सहमत न हुए। वे कहने लगे "यदि ऐसा ही हो, तो भी अग्रजों में इस समय जिस स्वदेश प्रेम के भाव भर हुए हैं वह एक नाचने का कुम्भित स्वदेश प्रेम है। उच्च कोरि का स्वदेश-प्रेम (जैसा कि, उमरु अदर मौजूद था) तो यह कहा जा सकता है जब मनुष्य अरु अरु लोभ-हितकर काम करने लगें।"

"मैं चाहता हूँ सभी लोग ऐसा ही करें।" वे फिर बोले। उनका अभिप्राय मझे अथवा नैतिक, पार्थिव और ऐसे कल्याण से था जिसका लाभ सबको एक-सा मिल सके। और इसलिए हम लाभ की विन्नी एक मनुष्य-समाज के लिए ही हृद्वा करना देश प्रेम नहीं किन्तु देश प्रेम है।

प्रत्येक मनुष्य-समाज के गुण विशेष भी स्वदेश प्रेम नहीं हैं, यद्यपि इन स्वदेश प्रेम-समयकों की आर से ये बातें भी स्वदेश प्रेम में बन जाती हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक मनुष्य-समाज में कुछ विशेषताएँ होनी मानव उन्नति की आवश्यक शर्तें हैं, और इन्हींके द्वारा विशेषताएँ

की रक्षा करना सच्चा स्वदेश प्रेम और एक उत्तम और लाभ प्रद भावना है। परन्तु एक बात स्पष्ट है। उस भी हमें ध्यान में रखना चाहिए। यदि एक समय में प्रत्येक मनुष्य का ये विशेषताएँ—य रूम रिवाज, उद्देश्य और भाषण मानव जीवन के लिए आवश्यक गतें थीं, तो इस समय में ये विशेषताएँ उस जीवन के माग में राई अटकाला है जो एक आदर्श जीवन समझा जाता है। परस्पर भ्रातृ भाव से मिल जुलकर रहना यही आनकल आदर्श जानन है। इसलिये किसी एक राष्ट्र की पृथक् राष्ट्रीयता को कायम रखने के आग्रह का फल होता है अन्य राष्ट्रों का इसी दशा में प्रवृत्त होना—रूम गमनी, फ्रांस अथवा इंग्लैंड को अपना राष्ट्रीयता का पोषण और रक्षा करत देख हंगरी, पोलैंड और आयरलैंड को हा नहीं धरन् यास्क प्रोवेंकल आदि अन्य देशों को भी अपनी राष्ट्रीय विशेषता की रक्षा करने की इच्छा जाग्रत होती है। दूसर लागों में प्रेम भाव और ऐक्य स्थापन होना तो दूर रहा ये एक दूसरे से और भा दूर और अलग हा जात हैं।

इसलिये काल्पनिक स्वदेशी प्रेम की मैं बात नहीं करता। मैं तो वास्तविक और सच्चे स्वदेश प्रेम के विषय में कह रहा हूँ जिसमें हम सब लोग परिचित हैं, जिसके प्रवाह में आज सैकड़ों मनुष्य बह चल जा रह हैं और जिससे मानव समाज को इतनी अधिक छति पहुच रही हं। वह अपना जाति के लिए आध्यात्मिक लाभ की अभिलाषा नहीं रखता (केवल अपना जाति के लिए ही आध्यात्मिक लाभ की अभिलाषा करना असम्भव है), वह तो और सब जातियों और दशा को छोड़ अपनी जाति को लाभ पहुचाने की एक उत्कट और निश्चित भावना है। और इसलिये यह स्वदेश प्रेम अपनी जाति तथा राज्य के लिए अधिक से अधिक सुविधाएँ और शक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखता है, और इनकी प्राप्ति तो हमेशा दूसरे लोगों अथवा राज्यों की सुविधाओं और शक्ति को नुक्सान पहुँचाकर ही की जा सकती है।

इस कारण यह स्वदेश प्रेम (Potnotism) भाव को दृष्टि से

एक कुस्मित और निम्न कोटि का तथा हानिकारक भाव है और सिद्धान्त की दृष्टि से एक मूलतापूर्ण सिद्धान्त है। क्योंकि यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यदि प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राज्य अपने आपको समार भर क सत्र मनुष्यों और राज्यों में सबध्रेष्ठ ममकन लगे, तो कहना होगा कि वे सभी एक भारा और हानिकारक भ्रम म पड़े हुए हैं।

(०)

कुछ लोगों को आशा हो सकती है, इस स्वदेश प्रेम स होने वाली हानि और विवक-शून्यता लागों पर अपन आप अवश्य प्रकट हो जायगी। परन्तु आश्चर्य का बात ता यह है कि सुशिक्षित और विद्वान् पुम्प स्वय ही उस नर्हा ल्ब पात, बल्कि जत्र कोई उसकी बुराइया उन पर प्रकट करता है तो वे बड़ी मरगर्मा और सन्ता के साथ उसका विरोध करते हैं। हालांकि उनका ल्लोलों में कोई सार नहीं होता।

पर इस मत्रका सार क्या है ?

मुझे तो इस आश्चर्य-व्यक्ति कर दन वाली बात का केवल एक ही स्पष्टीकरण मिलता है।

श्राप्ति काल से लेकर अधावधि-पयन्त मानव जाति का नितना भी कुछ इतिहास है, वह नाची-मे नीची काटि क विचार रखने वालों से लेकर ऊचा-म-ऊधी काटि का विचार रखने वाले व्यक्तियों तथा जन-समूहों क पान क त्रिकाम का इतिहास समझा जा सकता है। बल्कि यह तो एक पान सापान—पान का पाना—है, जिस पर चढ़कर जातिया पशु जीवन म लेकर उच्चातिउच्च मानत्र-जीवन का रेणा तक पहुची है।

प्रत्येक पृथक् जाति-समूह, राष्ट्र अथवा राज्य की भाति प्रत्यक मनुष्य विचारों की इस साढ़ा क ऊपर क्रमश आगे बढ़ता जाता है और अथ भी बढ़ता ना रहा ह। कुछ लोग आगे बढ़ रहे हैं कुछ अभी पीछे ही पड़े हुए हैं और कुछ—जिनकी सख्या बहुत बढ़ी है—मबसे आगे बढ़े हुए और सबसे पीछे पड़े हुए लोगों क बीच में हैं। परन्तु ये सभी लोग, फिर वे चाहे तीन की किसी भी सीढ़ी पर क्यों न हों, बिना

किमी रोक थाम के नीचे स ऊ च विचारों की ओर हा बढ़ रहे हैं । और हमेशा किसी एक निश्चित समय के ऊपर, भिन्न भिन्न व्यक्ति और भिन्न भिन्न जाति समूह दोनों—(सबसे उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए, मध्य श्रेणी वाले तथा पिछड़े हुए सभी) उन तीन प्रकार की श्रेणियाँ के अनुसार अपना अपना काय करत रहते हैं । जिनके साथ उनके तीन भिन्न भिन्न सम्बन्ध स्थापित हा जात हैं ।

वे तीन विचार-श्रेणियाँ कौन-सी हैं ? हमेशा, ब्यक्तियाँ और जाति समूहों के लिए भी कुछ विचार मूल-काल-सम्बन्धी हाते हैं, जा बिलकुल पुराने हाते हैं और जिन्हें लोग भूल हाते हैं । लोग पुन उन विचारों पर वापस नहीं जा सकते ।

कुछ विचार वर्तमान समय के हैं जो शिक्षा के द्वारा उदाहरण के द्वारा और चारों ओर काम करने वाले सब-साधारण लोगों के कार्यों से लोगों के दिमाग में भर दिये जाते हैं—और जो किसी निश्चित समय पर समाज में अपनी सत्ता चलाते हैं, उदाहरण के लिए संपत्ति, राज्य-संगठन, व्यापार धरलू पशुओं के उपयोग आदि के विषय में प्रचलित विचार ।

कुछ विचार भविष्य के भी हैं जिनमें स पहुँचों का अनुभव पहले से ही हो रहा है और जो लोगों को अपने रहन-सहन के ढंग में परिवर्तन करने और पहले के ढंग का विरोध करने के लिए बाध्य कर रहे हैं—श्रम-जीवियों को स्वतंत्र करने और श्रमियों को समानाधिकार देने और मान्य मन्त्र न करने आदि के विचार इनमें प्रधान हैं । कुछ विचारों में, यद्यपि वे पहले से ही स्वीकार कर लिये गए हैं, अभी रहन-सहन के पुराने तरीकों का विरोध करना आरम्भ नहीं किया है । ऐसे विचार (जिन्हें हम आदर्श के नाम से पुकारते हैं) बल प्रयोग को हटा देना, सम्पत्ति का ग्राहजनिक होना, विश्व धर्म तथा सब-साधारण में भातृ प्रेम स्थापित करना आदि अभी हमारे सामने आदर्श कोटि में हैं ।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अथवा जाति त्रिविध विचारों की तरफों

द्वारा आन्दोलित होती रहती हैं—मृत, वर्तमान और भविष्य के विचार । वह एक सग्राम ही होता है । नये विचारों का पुराने विचारों से सर्पण होता है । प्रायः एक मृत-काल का विचार, जो किसी समय उपयोगी एवं आवश्यक रहा है, आग चलकर अनुपयोगी और अनावश्यक हो जाता है, और वह छूटे-से सग्राम के पश्चात् एक नये विचार के लिए अपना स्थान खाली कर देता है । जो अब तक आदर्श था, अब कार्य-क्रम का रूप धारण कर लेता है ।

परन्तु कभी-कभी एक पुराने विचार को एक स्वाम जन-ममाज इस लिए नहीं छोड़ सकता कि उससे उसकी स्वाथ सिद्धि होती है यद्यपि औरों के लिए तो वह हानिकर ही होता है । तब वे लाग बड़ा चिन्ताशीलता के साथ उसकी रक्षा करते हैं । सारी परिस्थिति बदल जाने पर भी वे उसको प्रभावशाली बनाये रखने की कोशिश करते हैं । यह बात धार्मिक संप्रदायों में अक्सर पाई जाती है । पुरोहित और उपाध्याय कई बार निस्मार पुराने वाता को डमलित रखते हैं कि उससे उन्हें अर्थ प्राप्ति होती है ।

यही बात, राजनीतिक क्षेत्र में, राजनीतिक विचारों के सम्बन्ध में है जिसके ऊपर प्रत्येक राज्य का भार है । जिन लोगों के लिए प्रेमा करना लाभदायक है वे कृत्रिम उपायों के द्वारा इन विचारों की रक्षा करते हैं, यद्यपि अब उममें शक्ति और उपयोगिता दोनों का अभाव हो गया है । और चूंकि इन लोगों के पान दूसरों को प्रभावित करने के बड़े-बड़े शक्तिशाली साधन मौजूद हैं, वे अपने उद्देश्य को प्राप्ति करने में सर्व्व समर्थ रहते हैं ।

इस समय भी स्वदेश प्रेम विषयक प्राचीन और विपरीत विश्वास में सहन वाली आधुनिक विचार धारा के बीच जो भेद है इसका रहस्य यही प्राचीनता की जावनोष्कटा है ।

(३)

यह स्वदेश प्रेम, जिसका आदर्श है केवल अपने स्व-जातीय जनों के

साथ ही प्रेम भाव रखना और जो निर्बल मनुष्यों की उनके शत्रुओं द्वारा की जाने वाली हत्या तथा अत्याचारों से रक्षा करने के निमित्त अपने सुख, शान्ति, सम्पत्ति एवं अपने जीवन का भी त्याग कर देने को अपना धर्म समझता है—वह स्वदेश प्रेम उस समय में जरूर एक उच्चतम कोटि का विचार था जब प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए दूसरे राष्ट्र के लोगों के बंध को एवं उन पर अत्याचार करने को एक सुगम और न्याय युक्त काय समझता था ।

परन्तु इसमें पूर्व, लगभग दो सहस्र वर्ष हुए, मानव समाज ने उच्च कोटि के विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा मनुष्यों में पारस्परिक भ्रातृ भाव की स्थापना के उच्चतर विचार को स्वीकार किया, और उस विचार ने लोगों के हृदयों में धीरे धीरे प्रवेश करते-करते आज अनेक भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिये हैं । धन्यवाद है उन रेल, तार, मोटर आदि आने जाने के समुन्नत साधनों तथा कारीगरी व्यापार कला कौशल और विज्ञान को कि चिनगी बंदीलत लोग आज एक दूसरे के साथ इस प्रकार बंध गये हैं कि किसी पड़ोसी जाति की ओर से किये जाने वाले कल्ल और अत्याचार अथवा उसके द्वारा विजित किये जाने का भय बिलकुल नहीं रह गया है और सब लोग (कवल लोग ही, सरकारें नहीं) आपस में शान्ति के साथ, परस्पर एक दूसरे को लाभ पहुंचाते हुए, मित्र भाव का और व्यापारी सम्बन्ध रखे रहते हैं । इसमें किसी का परिवर्तन करने की न कोई उच्च आवश्यकता है और न वे ऐसा करना चाहते हैं । और इसलिए लाग यह समझत होंगे कि स्वदेश प्रेम के प्राचीन भाव में (जो अब व्यय सा हो गया है और उस भ्रातृ भाव के बिलकुल प्रतिकूल है जो हमें दून चीनों की बंदीलत प्राप्त हुआ है) धीरे धीरे कमी हाती जायगी और अन्त में बिलकुल नष्ट हो जायगा । पर तो भी इसके बिलकुल विपरीत बात हो रही है—इस हानि-कारक और प्राचीन रूपमद्दक भाव का केवल अस्तित्व ही नहीं बना रहता बरन वह अधिकाधिक तेजी के साथ घटता जा रहा है ।

लोग बिना किसी उचित कारण के तथा नीति धनीति और अपने हित का भी खयाल छोड़कर इन सरकारों के साथ महानुभूति रखत हैं। अब वे दूसरे राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण करती हैं, दूसरे देश वालों के प्रवेश और सम्पत्ति छीन लेती हैं और जो कुछ वे पहल सुरा चुकी है, उसकी पशु-बल के द्वारा रक्षा करता है। वे केवल महानुभूति ही नहीं रखते, किन्तु स्वयं भी अन्य आक्रमणों, लूटों और ठेसा रक्षा के लिए उत्सुक रहते हैं बल्कि ऐसे कामों में आनन्द मानते हैं और उस पर गर्व करते हैं। इन अत्याचारों से पीड़ित छोटे छोटे देश, जो बड़ा-बड़ी रियासतों के आधिपत्य में आ गये हैं—पोलैंड, आयलैंड, बोहमिया, फिनलैंड अथवा अरमीनिया—अपने विनेताओं के स्वदेश प्रेम का, या उनके उस उत्पीड़न का कारण है, विरोध करत हुए भी अपने विनेताओं से उत्पीड़क स्वदेश प्रेम का दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और वे अपना सारी शक्ति इसी भाव के अनुसार काम करने में व्यय कर देते हैं। और स्वयं अपने से बलवान् राष्ट्रों के स्वदेश प्रेम से कष्ट पात हुए भी इसी स्वदेश प्रेम से प्रेरित होकर दूसरे लोगों के साथ वही अन्याय और अत्याचार करते हैं जो उनके उपीड़कों ने उनके साथ किया है और अब भी कर रहे हैं।

यह सब हमनिष्ठ होता है कि शासक-समान के लोग (जिनमें केवल अमली शासन करने वाले लोग और उनके कमचारा ही सम्मिलित नहीं हैं, किन्तु वे सभी लोग शामिल हैं, जो विगपाधिकारों का उपभोग करते हैं—पू जीपति, पत्र-सम्पादक, तथा बहुत से कला-कुशल और वैज्ञानिक आदि—) अपनी इस स्थिति को—जो भ्रमजारी समान का स्थिति के मुकाबल में कहीं अधिक लाभदायक और सुविधा जनक है—बनाये रख सकते हैं। उनके धन्यवाद है इस राजकीय संगठन को जिसकी भित्ति पर स्वदेश प्रेम के ऊपर है। उनके हाथ में लोगों को प्रभावित करने वाले सभी शक्तिशाली साधन मौजूद रहते हैं, और वे हमेशा बड़े परिश्रम के साथ अपने-तथा दूसरे लोगों के अन्तर उस

स्वदेश प्रेम के भावों का समर्थन करते रहते हैं, विशेष कर जो भाव सरकार की शक्ति की पुष्टि करते हैं, उनके बदले में सरकार की धोर से बड़े-बड़े इनाम और बख्शीशें मिलती हैं।

जितना ही अधिक निस कमचारी के अन्दर स्वदेश प्रेम के भाव होंगे, उतना ही अधिक वह अपने जीवन में सफल होगा। उसी प्रकार फौज के सिपाही को भी युद्ध-काल में ही तरबकी मिलती है और युद्धों की जड़ भी स्वदेश प्रेम ही है।

स्वदेश प्रेम और उसके परिणाम—युद्धसे समाचार पत्रों को बहुत बड़ी आय होती है और दूसरे बहुत से व्यवसायों को भी लाभ पहुँचता है। प्रत्येक लेखक, अध्यापक और प्रापेसर जितना ही अधिक स्वदेश-प्रेम की शिक्षा देता है उतना ही अधिक वह सुरक्षित रहता है। प्रत्येक महाराना और सम्राट् को उतनी ही अधिक प्रसिद्धि प्राप्त होती है जितना अधिक वह इस स्वदेश प्रेम का आश्रय लेता है।

शासकों के हाथ में सेना रपया पैसा, स्कूल, गिरा तथा प्रेस सभी कुंघ होता है। स्कूलों में वे बच्चा के अन्दर इस स्वदेश प्रेम की आग उन इतिहास की पुस्तकों द्वारा उत्पन्न करते हैं जिनमें अपने ही देश के लोगों को सत्-भर के मनुष्यों में उत्कृष्ट और सत्-पथ-नामी बतलाया गया है। युवकों के अन्दर वे इसे प्रदर्शिनियों बड़े बड़े जलसों, स्मारकों तथा मिथ्या भाषण पट्टे स्वदेश प्रेम की डांग मारने वाले समाचार-पत्रों और पुस्तकों के द्वारा भरते हैं। इसके अतिरिक्त स्वदेश प्रेम की ज्याला धधकाने की पृष्ठ और बड़ी अच्छी युक्ति है। पहले दूसरे राष्ट्र के साथ हर तरह का अत्याय और सत्ती करके उनमें अपने ही लोगों के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न किया जाता है और फिर इस वैर भाव की सहायता से स्वयं अपने लोगों को विदेश वालों के विरुद्ध भड़काते हैं और उनमें शत्रुता के भाव भरते हैं।

स्वदेश प्रेम का यह भयकर भाव यूरोपियन लोगों में बड़ी तीव्र गति के साथ फैल गया है, और हमारे इस समय में आखिरी हद को

पहुंच गया है निम्के आगे उम्के विस्तार के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है ।

(४)

बहुत पुरानी बात नहीं, अभी एक ठेमी घटना घटा थी जिसमे यह साफ जाहिर होता है कि इसाद जगत् में इस स्वदेश प्रेम का कैसा भयकर नशा पैदा हो गया है ।

जमनी क शासकों ने अपने देश क अशिष्टित जनों में स्वदेश प्रेम को जमा भडकाया कि उन्नीसवीं शताब्दी क अन्तिम पचाम वर्षों में एक विचित्र कानून की व्यवस्था की गई । उम कानून के अनुसार सभी लोगों को सैनिक बनना पडता था । बालक, युवा, वृद्ध, विद्वान् और घमाचाय सभी को मर-हत्या करने की शिक्षा प्राप्त करनी पडता थी । सेना के उच्च-कर्मचारियों क हाथ में बिलकुल बठपुतला बनकर रहना पडता था, और निय किमा क लिए भी हुक्म लिया जाय उमे यमलोक पहुचा उन क लिए हर समय तैयार रहना पडता था । उर्पाहित जेग क निगामियों तथा अपने अधिकारों क लिए लडन वाल स्वय अपने ज—भाइ श्रमनीवियों को—यहा तक कि स्वय अपने बाप और भाज्यों तक को मार डालने क लिए तैयार रहना पडता था । उम निलज्ज वादशाह विलियम द्वितीय ने गुल तौर पर यह सब घोषित कर लिया था ।

इस बात को कि निम्न लोगों क हज्यों में एक विचित्र क्रान्ति उत्पन्न कर ज, जमनी के लोगों ने स्वदेश प्रेम के आवग में आकर जिना किमा चु-चा क म्बीकार कर लिया । इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंन प्रामामियों क रूपर विजय प्राप्त कर ला । इस विजय ने जमनी क और इसके जग प्रान्म, म्य तथा अन्य जश-शामकों के हज्यों में इस स्वदेश प्रेम क भाव को और भी उत्तेजित कर लिया और इस

१ गत यूरोपीय महायुद्ध को टॉर्स्टॉय नहीं ज्म सक जा उनकी सृयु क चार हा वर्ष जग अथात् १९१४ में झिडा और लगातार ४१५ वर्ष तक धन जन की भयकर हानि करता रहा । म०

हिस्सा ल तो उसमें प्रत्येक को कहीं अधिक लाभ पहुँच सकता है। यह सब बड़ा ही उत्तम है, परन्तु इसमें सबसे बड़ी बुरा यह है कि प्रथम तो कोई भा मनुष्य यह नहीं जानता है कि जब सब चीजें बराबर बाँट दी जायेंगी, उस समय प्रत्येक मनुष्य का हिस्सा क्या होगा अलावा, हर एक आत्मा का हिस्सा, चाहे कुछ भी हो जो लोग इस समय विलासितापूर्ण और अमाराना चिन्दा बसर करत है, उनका लिए वह अपमान (नाकामी) ही मालूम होगा। “मैं लोग सुखी एवं सम्पन्न होंग, और तुम भा मैं ही सुखी और सम्पन्न हाग, जैसा कि दूसरे लोग।” —“परन्तु मैं बाका आत्मियों का तरह रहना नहीं चाहता, मैं उनसे अच्छी हालत में रहना चाहता हूँ। मैं हमेशा मैं दूसरों से अच्छा हालत में रहता आया हूँ और मैं एम जीवन का आदा हो गया हूँ।” —“और मैं, मैं तो मुदतों से सब लोगों में बराबर हालत में रहता आया हूँ, और अब मैं ठीकी तरह रहना चाहता हूँ जिस तरह दूसरे लोग रहत है।” यह उपाय सत्य निश्चय उपाय है, क्योंकि इसमें यह सम्मान का भूल की गद् है कि जब कि समा अच्छे जीवन का कारिण कर रह है कुछ लोग म समय का आशा का जा रहा है।

एक-मात्र उपाय तो यह है कि लोगों पर उनका सच्च दित की बात प्रकट कर दी जाय, और उन्हें यह दिखना दिया जाय कि घन एक बहुत बड़ी बरकत नहीं किन्तु लोगों को उनसे उनका सच्चा भलाई का बात दिपाकर, अपन दित से विमुक्त रगन वाला वस्तु है।

इसका कवल एक ही उपाय है और वह यह कि सामारिक इच्छाओं रूपा दिष्ट को यन्द कर दिया जाय। कवल इससे उष्णता का समान वितरण हो सकगा। पैदावार को बढ़ान का प्रयत्न करन और इस प्रकार सावजनिक सम्पत्ति की वृद्धि करन म सत्र-माधारण का कल्याण नहीं हो सकता। आग में कहीं घा डालन म आग बुझती है ?

न जानु काम कामानामुपभोगन शान्यति ।

द्विषा वृष्णवर्त्मव भूय एवाभिरुत ॥”

अराजकता

अराजक लोगों का यह कथन सम्पूर्णतया ठीक है कि वर्तमान व्यवस्था को नहीं मानना चाहिए, क्योंकि इस समय जैसी दुःखवस्था और गड़बड़ी पैली हुई है, अधिकारी वर्ग के न रहने पर उससे अधिक दुःख वस्था और गड़बड़ी न होगी। उनका यह प्रयास गलत है कि अराजकता की स्थापना केवल हिंसामय क्रान्ति के द्वारा ही हो सकती है।

अराजकता की स्थापना अवश्य होगी। किन्तु उसकी स्थापना केवल उसी समय हो सकेगी, जब इस राजकीय शक्ति द्वारा अपनी रक्षा न चाहने वाले आदमियों की सख्या बढ़ेगा जब ऐसे लोगों की सख्या बढ़ेगी जिन्हें इस शक्ति को काम में लाने लज्जा मालूम होगी।

“यह मारा पू जी पतियों का सगठन धर्मजीवियों के हाथ में चला जायगा, और उस समय धर्म जीवियों के ऊपर कोई भी अत्याचार न होंगे और कमाई का अनुचित (रिपम) विभाग भी न होगा।”

“लेकिन सवाल यह है कि उस समय काम की व्यवस्था कौन करेगा ? उनका शासन किमके हाथ में होगा ?”

“यह सब आप-मे आप होता रहेगा। धर्मजीवी लोग स्वयं हर एक बात का प्रबंध कर लेंगे।”

‘लेकिन यह पू जी पतियों का सगठन केवल इसीलिण किया गया था कि प्रत्येक काम की व्यवस्था करने के लिण ऐसे व्यवस्थापकों की आवश्यकता है निनके हाथ में कुछ शक्ति हो। पर जहाँ शक्ति होगी

वहा उमका दुरपयोग भी होगा—वही बात जिम्के मिटाने की तुम इस समय कोशिश कर रहे हो ।

इस प्रश्न का कि, बिना सरकार के, बिना अदालतों के और बिना सेना के काम कैसे चलेगा, कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता । क्योंकि यह प्रश्न ही गलत है । समस्या यह नहीं है कि आनकल के आदेश की अथवा किमा नरीन आदेश का सरकार की स्थापना किस प्रकार की जा सकती है । न मैं और न हममें से कोई अन्य व्यक्ति इस प्रश्न का जैमला करने के लिए नियुक्त किया गया है ।

पर तो हमारा लिए भी इस प्रश्न का उत्तर देना अनिवार्य है कि मेरे मामले हमेशा बढ़ी रहने वाली इस समस्या का मुझबिला मैं किस प्रकार करूंगा ? क्या मुझे अपना अत करण उन कामों के हवाले कर देना चाहिए जो हमारे चारों ओर मभार में हो रहे हैं ? क्या मुझे इस बात की धोपणा कर देनी चाहिए कि मैं उस सरकार के कामों में महमत हू, जो गलती करने वाले आदेशियों का फामी पर लटकवा देता है, जो लोगों को करल करने के लिए पौन रखती और भवती है, जो दुनिया की कामों को अश्रीम खोरी तथा शराय-गोरी में डालकर उनका मयानाश करती है ? अथवा मुझे अपने बारे वाम अपना अत रामा के आदेशों के अनुमार करन चाहिए ? अथात् क्या मुझे उम सरकार के साथ किमी प्रकार का सहयोग करन मे इन्कार कर देना चाहिए निम्क सारे काम मरी अन्तरामा के विरुद्ध होने हैं ?

इस प्रकार मनुष्यों के दिमाग में काठित होन पर उसका परिणाम क्या हागा ? तब मौजूदा सरकारों के स्थान में कैसी सरकार की स्थापना होगी—यह मैं सुद्ध नहीं जानता । इसलिये नहीं कि मैं उसे जानना ही नहीं चाहता, बरिक् इसलिये कि मैं उसे जान हा नहीं सकता । हा, मैं इतना जम्न जानता हू कि, "यदि मैं विवेक और प्रेम अथवा विवकशील प्रेम के उपादेश पर जो कि मुझमें जन्म से ही विद्यमान है, चलूंगा और अपने कामों को करता रहूंगा, तो इसका परिणाम बुरा

न होगा। एक मनु-मच्छिका (शहद की मच्छी) अपनी अत प्रवृत्ति के अनुसार काय करने और मर मिटने के लिए अपने छत्ते के बाहर निकलकर अथ मधु मच्छिकाओं के साथ समूह रूप से उड़ने को चली जाती है और उसका कोई बुरा परिणाम नहीं होता। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को भी अपनी अतरात्मा के आदेश के अनुसार चलना चाहिए। परन्तु मैं यह फिर कहूंगा कि मैं इसका फैसला करना चाहता हूँ और न कर ही सकता हूँ।

यही महामा ईसामसीह के उद्देश्यों की महत्ता और शक्ति है— यह नहीं कि ईसा इश्वर अथवा एक महापुरुष थे। किन्तु उनकी यह शिक्षा अखण्डनीय है। उनके उपदेश का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने इस विषय को शाश्वत (निरंतर बने रहने वाले) सदेह और अनुमान के साध्याय से निकालकर निश्चय के समतल पर पहुँचा दिया है। “तू एक मनुष्य है, एक बुद्धिमान् और दयानु प्राणी है, और तू इस बात को जानता है कि य गुण सर्वोत्कृष्ट हैं। इसके अतिरिक्त तू यह भी जानता है कि आज अथवा कल किसी न किसी दिन तू मरेगा, तुझे इस समार को छाड़ना होगा। यदि कहीं पर ईश्वर है, तो मुझे उससे सामने जाना होगा, और वह तुझसे तेरे कामों का लेखा (हिसाब) मागेगा। यह पूछेगा कि तूने उसकी आज्ञा (कानून) के अनुसार अथवा कम-से-कम, उन प्रशिष्ट गुणों के अनुसार कार्य किया है या नहीं जो उसने तुझमें उत्पन्न किये हैं। यदि कहीं इश्वर नहीं है, तो तू बुद्धि (Reason) और प्रेम (Love) को मनुष्यों के सर्वोत्कृष्ट गुण समझ और तब तू अपनी अथ सारी वृत्तियों को उन्हीं के हवाल कर दे, उन्हें अपने पशु स्वभाव की दामी न बनने दे—उन्हें जीवन-मरण की वस्तुओं की चिन्ता की, दुःखादि के भय की और सामानिक विपत्तियों की चिन्ता न बनने दे।”

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, प्रथम यह नहीं है कि कौन-सा समाज अधिक सुरक्षित होगा, अधिक अच्छी तरह से होगा—यह

निसका रक्षा शस्त्र-बल की सहायता से, बड़ी बड़ी तोपों-बन्दूकों की सहायता से अथवा लोगों को फौजी का भय दिखलाकर की जाती है, अथवा वह निसका रक्षा के लिए ऐसे कोई भी साधन नहीं है। परन्तु मनुष्य के सामने केवल एक ही प्रश्न है और उस प्रश्न की उपेक्षा करना उसके लिए असम्भव है, अर्थात् यह कि—“क्या तू, जो एक बुद्धिमान् और श्रेष्ठ प्राणी है, जो थोड़े-से समय के लिए इस सत्सार में आया है और निसका किसी भी समय नाश हो सकता है, नूल (गलती) करन वाले आदमिया अथवा किसी भिन्न जाति, कुटुम्ब अथवा सम्प्रदाय के मनुष्यों की हत्या में भाग लेना पसन्द करेगा ? क्या तू समस्त अमन्य समझी जाने वाली जातियों को पृथ्वी-तल से मिटा देने में भाग लेना पसन्द करेगा, क्या तू अपने लाभ के लिए अन्य जातियों को शराज-खोरी और अफीम-खोरी के दुर्गसनों में फसा कर परम पिता की मन्तान क वृत्रिम विनाश का कारण बनना पसन्द करेगा ? क्या तू इन सब कामों में हिस्सा लेगा अथवा उन लोगों के साथ अपनी महमति प्रकट करेगा जो इन कामों की इनाजत देते हैं अथवा तू इन सबमें अलग रहेगा ?”

जिन लोगों के सामने यह प्रश्न उपस्थित है, उनके लिए हमका केवल एक ही उत्तर ही सकता है। हमका परियाम क्या होगा, इस बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता, क्योंकि यह मेरे जानने की बात नहीं है। परन्तु किया क्या जाना चाहिए यह बात मैं अवश्य जानता हूँ।

यदि तुम पूछो—“इसका अर्थ क्या होगा ?” तो हमका उत्तर मैं यह दता हूँ कि इसका अन्त अच्छा अवश्य होगा, क्योंकि बुद्धि और प्रेम के बतलाये मार्ग पर चलने से मैं उस सबसे श्रेष्ठ कानून के अनुसार कार्य कर रहा हूँ, और जो मुझे ईश्वर से प्राप्त हुआ है।

X X X X

उन अधिकार भद्र पुरुषों की स्थिति बड़ी भयकर और निराशा-

पूर्ण प्रतीत होती है, जिनके हृदय में सच्चे विश्व-बन्धुत्व के भाव तो जागृत हो चुके हैं। पर जो इस समय पर धनापहरण करने वाले कुरूपित ग्राम-लोगों के कपट जाल और मक्क फरेब का शिकार हो चुके हैं, जो उन्हें अपना जीवन सत्यानाश करने के लिए विवश कर रहे हैं।

कमल दो मांग ही हमें दिखलाई पड़ते हैं और सो भी वे दोनों बन्द (रुद्ध) हैं। एक तो हिंसा या बल प्रयोग (Violence) को हिंसा या बल प्रयोग, भय प्रदर्शन, डाइनामाइट बम और तलवार के जोर से नष्ट करना, जैसा कि हमारे "निहलियों (रूम के नास्तिक) और शराजकों ने उद्योग किया है, अर्थात् सरकारों की ओर से भिन्न भिन्न राज्यों के विरुद्ध किये जाने वाले पड़्यत्र का याहूर से नाश करना। दूसरा यह कि सरकार के माध्यम से सुलहनामा कर लिया जाय, उसे कुछ सुविधाएँ प्रदान कर दी जाय, उसमें हिंसा लिया जाय—अर्थात् उसके साथ सहयोग किया जाय, जिससे धीरे धीरे उस पाश का प्रयत्न विच्छेद किया जा सके जो लोगों को जकड़े हुए है, और वे स्वतंत्र (आजाद) किये जा सकें। पर ये दोनों मांग बन्द हैं।

जैसा कि अनुभव से ज्ञात हुआ है, बम और तलवार के प्रयोग का परिणाम केवल उलटा होता है उससे लाभ के बदले हानि होती है, मफलता का मांग रूध जाता है और उस अधिक से अधिक कीमती शक्ति अर्थात् लोक-मत का जो हमारे हाथ में एक मात्र अस्त्र है, नाश हो जाता है।

दूसरा, सहयोग या, मांग इसलिए बन्द है कि सरकारों ने यह बात पहले से ही समझ ली है कि वे किस हद तक ऐसे लोगों का हस्तक्षेप अथवा सहयोग स्वीकार करें, जो उनका सुधार करना चाहते हैं। वे केवल उसी हद तक सहयोग अथवा हस्तक्षेप करने में तैयार हो सकती हैं जिससे उनके किसी काम में बाधा नहीं रहती है—पर जो बातें उनके लिए हानिकर हैं, उनमें वे सदैव सतर्क रहती हैं—इस कारण कि इसका सम्बन्ध स्वयं उनके अस्तित्व से है। वे अपने से

भिन्न विचार अथवा मत रखने वाले आदमियों को—ऐसे आदमियों को जो उनका सुधार चाहते हैं—कमल इसीलिए अपन यहाँ नहीं ले लेती कि वे इन आदमियों की मांगें पूरी करना चाहती हैं, बल्कि इस लिए भी कि इनमें इनका भी स्वायत्त है। ये लोग सरकारों के लिए बड़े हाथ खतरनाक मायित हों यदि वे बाहर रहें और उनके खिलाफ लोगों में बगावत फैलावें उस चीज का सरकारों के विरुद्ध उपयोग करते रहें जो इन सरकारों के हाथ में एक-मात्र साधन (अस्त्र) है—लोकमत। प्रत्येक सरकारों को इन लोगों के लिए कुछ सुविधाएँ (रियायतें) करके प्रलोभन कर उन्हें निरस्त्र करना पड़ता है, निम्नमे वे उनको कुछ हानि न पहुँचा सकें। फिर वे उनसे अपने स्वार्थ की मिट्टि करता है—अर्थात् उनमें प्रजा-पीडन आदि में सहायता लेती है।

ये लोगों ही मांग बड़ी मनमूती के साथ चन्द और दुर्गम कर दिये गये हैं, अथ और कौन सा मांग शेष रह जाता है ?

उल प्रयोग से काम लना अशक्य है इसका परिणाम उलटा ही होगा सरकारी नौकरियों और पदों का स्वीकार करना या अशक्य है—इसमें मनुष्य सरकार के हाथ की कठपुतली बन जाता है इसलिये केवल एक मांग ही अवश्य रह जाता है—विचारों में, वाणी में कार्य में और अपनी सारी शक्ति लगाकर सरकार के साथ युद्ध करना—न उसका अधानता स्वीकार करना और न उसकी नौकरियों और पदों को स्वीकार कर उसकी शक्ति को बढ़ाना।

अकेले इसी एक बात की आवश्यकता है, और यही निश्चित सफलता का एक-मात्र मांग है।

यही ईश्वर की आज्ञा है और महात्मा इसा-मसीह के उपदेश का यही सार है।

X

X

X

इस समय हमें उस स्थिति को पहुँच गये हैं जब एक शुद्ध-हृदय

और बुद्धिमान मनुष्य किसी राज्य (सरकार) के कामों में किसी प्रकार का कोई हिस्सा नहीं ले सकता, अर्थात् (रूस का जो कहना हो क्या है) इंग्लैण्ड में भी जमींदारी की प्रथा से, धड़े धड़े वस्तु निर्माण करने वाले कारखानों के मालिकों पूजीपतियों द्वारा किये जानेवाले कामों से, भारतवर्ष में प्रचलित प्रथाओं, अर्थात् कानेबाजी, और थफीम क ब्यापार आदि से अफ्रीका की सारी-की-भारी कौमों का पृथ्वी-तल से भिटा देने के लिए किये जानेवाले राष्ट्रपत्नी प्रयत्नों से, लडाइयों और लडाइयों के लिए की जानेवाली तैयारियाँ से सहमत नहीं हो सकता है।

निम्न बात के आधार पर मनुष्य यह कहता है कि—“मैं नहीं जानता कि सरकार क्या चीज है, और वह क्यों कायम है, और मैं इस बात को जानना भी नहीं चाहता, परन्तु मैं यह बात जरूर जानता हूँ कि मैं अपने अन्तःकरण के विरुद्ध अपना जीवन नहीं बना सकता—“वह एक बहुत ही बड़ विचार है। इस समय के लोगों को चाहिए कि यदि वे अपने जीवन में कुछ भी उन्नति करना चाहते हैं तो वे इसक ऊपर रुकें। “मैं इस बात को जानता हूँ कि भरा अन्तःकरण मुझे किम बात की आज्ञा देता है, रही तुम्हारी बात, सो हे राजपुत्र्यो, तुम राज्य की पूर्ण व्यवस्था कर लो जैसी कि तुम चाहते हो, ताकि वह इस समय के मनुष्यों के अन्तःकरण की मांग के बिलकुल अनुबल हो।”

परन्तु लाग इस दुग्म स्थान का परित्याग कर रहे हैं, सुधार के विचार से तथा सरकार के कामों में उन्नति करने के ख्याल से वे उससे सहयोग करते हैं और इस प्रकार वे अपने अज्ञेय और दुर्भेद्य स्थान से भ्रमग हो जाते हैं।

मुधार के तीन तरीके

प्रमत्तावियों का दूरा मुधारने और लोगों में भ्रातृ-भाव स्थापित करने के तान उपाय है ।

१—लोगों से अपने लिए जवदस्ती काम न कराना, प्रायश्च अथवा अप्रत्यक्ष किमा भी प्रकार इनमे काम करने को न कहना, ऐसी भावों की आवश्यकता को कमी उत्पन्न न करना जिनके बनाने में विशेष परिश्रम की आवश्यकता है—ऐसी सभी वस्तु विलासता की सामग्री है ।

२—अपने लिए, तथा, यदि समव हो सके तो, दूसरों के लिए मा पैसा काम करना तो थका देनेवाला और अरुचिकर हो ।

३—जो वास्तव में एक उपाय नहीं किन्तु इस दूसरे उपाय का परिणाम और उसका प्रयोग है, प्रकृति के नियमों का अध्ययन करना और परिश्रम घटानेवाले उपायों—कलों, वायु-शक्ति, विद्युत्-शक्ति आदि का आविष्कार करना । सिर्फ आवश्यक वस्तुओं का ही (जिनमें कोई भी बात अनावश्यक और व्यर्थ नहीं है,) आविष्कार केवल उर्मा-समय मनुष्य कर सकेगा जब वह इन वस्तुओं के आविष्कार द्वारा स्वयं अपने परिश्रम को, अथवा कम-से-कम उस परिश्रम को घटाना चाहता है जिम्का उसने स्वयं अनुभव किया है ।

परन्तु इस समय लोग केवल इस तीसरे उपाय को काम में लाने में व्यस्त हैं, और वह भी गलत तरीके पर, क्योंकि वे दूसरे उपाय से (जो ऊपर बतलाया गया है) बिनाकुल दूर रहते हैं । और फिर यही

नहीं कि वे पहल और दूसरे उपाय को काम में लाने ही के लिए तैयार नहीं हैं, बल्कि वे उनकी बात भी सुनना नहीं चाहते ।

× × × ×

केवल एक ही क्रान्ति स्थायी हो सकती है, नैतिक क्रान्ति—
अन्तरात्मा का परिवर्तन ।

यह क्रान्ति किस प्रकार हो ? इस बात को कोई भी नहीं जानता कि मानव समाज के अदर इसका आविर्भाव कैसे होगा । परन्तु प्रत्येक मनुष्य अपने अदर इसका अनुभव स्पष्ट रूप से करता है । फिर भी इस सत्तार में प्रत्येक मनुष्य मानव जाति में परिवर्तन करने का ही विचार किया करता है । कोई यह नहीं सोचता कि अपने अदर कैसे परिवर्तन किया जाय ।

× × × ×

लोगों ने गुलामी की प्रथा तथा गुलामों के रखने के अधिकार को तो मिटा दिया, परन्तु लोगों ने अपना अमीराना रहन सहन बिना जरूरत दिन में चार-चार बार कपड़ों का बदलना, बड़े-बड़े आलीशान महलों में रहना, खाने में दस दस तरतरियों का लगना और घोड़ा-गाड़ियों तथा मोटरों, फिटनों आदि की सवारी, इत्यादि को अब भी जारी रखा है । इन सारी चीजों का होना बिना गुलामों के रहे असंभव है । यह बात सत्र पर भली भाँति प्रकट है । पर तो भी यह किसी को दिखाई नहीं पड़ता ।

धर्म

- १ धर्म का नत्व
- २ प्रेम की परीक्षा
- ३ बुद्धि और प्रेम
- ४ चमत्कार और चमत्कार-कर्ता

१ :

धर्म का तत्त्व

लोग इस समय नाना प्रकार के दुःख इसलिए भोग रह रहे हैं कि अधिकांश जन-समाज धर्म हीन जीवन व्यतीत कर रहा है। यहाँ धर्म शब्द से तात्पर्य उस धर्म से नहीं है जिसकी समाप्ति कुछ धार्मिक सिद्धान्तों को मान बैठने, और कुछेक मनोरंजक धार्मिक विधि-नियमों का पालन कर लेने में ही हो जाती है, जिनमें अपने आपका धैर्य और सतोष मिल जाता है और कुछ आत्मोत्साह भी बढ़ जाता है। यहाँ तात्पर्य एसे धर्म से है जो मनुष्य का सम्बन्ध ईश्वर के साथ स्थापित और दृढ़ करता है, और इसलिये मनुष्य के सारे कर्मों का एक उच्चादर्श के ऊपर सुचारु रूप से संचालन करता है और जिसके बिना मनुष्य-जाति बिलकुल पशुवत् वरन् उससे भी हीन बनी रहती है। यह बुराई जो मनुष्य-जाति को अधःपतन के गहन गड्ढे का ओर खींचे लिये जा रही है, यहाँ पर उसका नाश अनिवार्य है, इस समय अपनी विशेष शक्तियों के साथ प्रकट हुई है। क्योंकि जीवन में बुद्धि का पथ प्रदर्शन न रहने तथा लोगों की शक्ति के मुख्यतः विज्ञान-सम्बन्धी रोज और उद्योग में लग जाने के कारण मनुष्यों ने प्रकृति के ऊपर अतुल्य शक्ति प्राप्त कर ली है। परन्तु इस शक्ति का उचित प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है, इस बात का कोई मार्ग-दर्शक न होने के कारण उन्होंने स्वभावतः उसका उपयोग अपनी पारंपरिक शक्तियों तथा इंद्रियों की शक्ति करने में ही किया है।

धर्म विहीन होने के कारण वे मनुष्य प्रकृति के ऊपर अतुल्य शक्ति प्राप्त होते हुए भी उन बालकों के समान हैं जिन्हें गोला बारूद अथवा विस्फोटक पदार्थ रखने के लिए दे दिये गए हों। इस शक्ति पर, जो कि इस समय के लोगों को प्राप्त है, तथा उस ढंग पर, जिस ढंग से वे उसका इस्तेमाल करते हैं, विचार करने पर यह मालूम होता है कि यदि उनके नैतिक विकास का दृष्टि में रखा जाय तो मनुष्यों को रेल, भाप, विद्युत् शक्ति, टेलीफोन, फोटोग्राफ, विना तार का तार आदि का ही नहीं बरन् लोहा और फौलाद बनाने की साधारण कला के भी इस्तेमाल का अधिकार नहीं है। उन्नति का इन सारी वस्तुओं तथा कलाओं का प्रयोग वे केवल अपनी काम विपाया बुझाने, आमोत् और पेय्याशी की निन्दगी बखर करने तथा एक-दूसरे का नाश करने में करते हैं।

तो फिर ऐसी दशा में होना क्या चाहिए ? क्या जीवन के इन समस्त सुधारों का, उस सारी शक्ति का, जो मानव-जाति को प्राप्त हुई है, एकदम परित्याग कर दिया जाय ? क्या उन सारी बातों को मुला दिया जाय जो मानव जाति न सीखी हैं ? यह असम्भव है। इन आविष्कारों का (जो मानसिक विकास का फल है) प्रयोग कितने ही हानि-कारक ढंग से क्या न किया गया हो, तो भी वे मनुष्य की प्राप्ति की हुई वस्तुओं और मानव जाति के विकास के धातक हैं, और हम उन्हें भूल नहीं सकते। क्या भिन्न भिन्न राष्ट्रों के उस पारम्परिक सम्बन्ध को तोड़ दिया जाय जो शताब्दियों में स्थापित हो सका है, और उनकी जगह नये सम्बन्ध स्थापित किये जाय ? क्या पत्नी नवीन सस्याओं को जन्म दिया जाय जो बहु संख्यक मनुष्य-समान को रोक सकें ? क्या ज्ञान के प्रचार की सलाह आप दे रहे हैं ? ये सब बातें आपमाइ जा चुकी हैं और इन्हें बढ़े चार और उरमाइ के साथ किया भी जा रहा है। उन्नति व ये समस्त कल्पित उपाय अपने आपमें परेशानी में डाराने और निश्चित नाश का शोर से ध्यान को हटाने के मुख्य उपाय हैं। राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन हो गया है, सस्या बदल गई हैं, ज्ञान

का भी खूब प्रचार हो गया है। परन्तु दूसरी सीमाओं के अन्दर दूसरी संस्थाओं के साथ, और परिवर्धित ज्ञान के साथ भी मनुष्य वैसे ही पशु बने हुए हैं जो हर समय एक दूसरे को मोच डालने के लिए तैयार रहते हैं, अथवा वैसे ही गुलाम (दास) बने हुए हैं जैसे कि वे हमेशा रहे हैं। और वे हमेशा इसी तरह रहेंगे, जबतक कि उनका माग-दर्शक (नियन्ता) धार्मिक ज्ञान नहीं परन्तु काम, क्रोध आदि इन्द्रियों के विकार, मानसिक भागनाएँ तथा बाहरी जोर व दबाव इत्यादि रहेंगे।

मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकता, वह या तो सब से अधिक अविवेकवान् और घमण्डी आदमियों का गुलाम होगा, अथवा इश्वर का दास (नौकर)। क्योंकि मनुष्य के लिए स्वतन्त्र होने का केवल एक ही माग है—इश्वर की आज्ञानुसार कार्य करना। पर कुछ लोग तो घम को मानते ही नहीं, कुछ उन बाह्य और विचित्र बातों को ही घम माने बैठे हैं, जो बिलकुल घम विरुद्ध हैं और कुछ केवल अपनी कामेन्द्रियों के हाके चलते हैं। य सब मनुष्यों के बनाये कानून को टरते हैं और राम दास होने के बजाय काम-दास होजाते हैं, अतएव वे वैसे ही पशु अथवा गुलाम बने रहेंगे। बाहर से किया गया कोई भी प्रयत्न उनका इस अवस्था से निकाल नहीं सकेगा, क्योंकि केवल धर्म ही मनुष्य को स्वतन्त्र बनाता है।

पर हमारे जमाने के तो अधिकांश लोग धर्महीन हैं।

(२)

थोड़े समय से लोग अपना धर्म खो बैठे हैं। इसीलिए वे नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं।

वर्तमान घम तथा उस मानसिक और वैज्ञानिक प्रिकाम क (जो इस समय मनुष्य-जाति को प्राप्त हुआ है), बीच जो भेद है उस दख कर जिन लोगों ने यह तय किया है कि साधारणतः किसी भी प्रकार के घम को मनुष्य को आवश्यकता नहीं। वे बिना घम के अपना जीवन

विता रहे हैं, और लोगों को यह उपदेश देते हैं कि धर्म चाहे किसी भी प्रकार का और कैसा ही हो, व्यर्थ है। दूसरे लोग भी जो धर्म को उस विकृत रूप में मानने वाले हैं, जिसकी शिक्षा लोगों को इस समय आता जा रही है, अन्य लोगों की भाँति धर्म हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं और केवल उन्हीं बाहर की खोम्बड़ी बातों को धर्म समझते हैं, जो मनुष्यों के सच्चे भाग की दर्शिका नहीं हो सकती।

तथापि वह धर्म, जो हमारे समय की सारी भागों को पूरा करता है अब भी वर्तमान है तथा सब मनुष्यों पर प्रकट है, और गुप्त रूप में समाज के लोगों के हृदयों में विद्यमान है। इसलिए, इस धर्म को सब लोग समझ जाय और उसके अनुसार सब काम करें। इसके बिना केवल एक बात की आवश्यकता है। शिक्षित समाज के लोग—जो अधिष्ठितों के नेता (माग-दृशक) हैं—यह समझ लें कि मनुष्य के बिना धर्म एक आवश्यक वस्तु है। बिना धर्म के मनुष्य अच्छा जीवन नहीं बिता सकता। और बिना धर्म का स्थान नहीं ग्रहण कर सकता। सत्तापारी तथा प्राचीन समय के खोखले धर्म का समर्थन करने वाले इस बात को समझ लें कि वे जिस बात को धर्म समझ कर उसका समर्थन करते हैं और लोगों को उनकी शिक्षा देते हैं, वह धर्म तो है ही नहीं बल्कि मनुष्यों के सच्चे धर्म का प्राप्ति के माग में एक बहुत बड़ा रोड़ा है। अतएव मनुष्य को मुक्ति का एकमात्र निश्चित उपाय यह है कि वह उन कामों का करना छोड़ दे जो मनुष्यों को सच्चे धर्म को पहचानने से रोकते हैं जो पहले से ही उनके अन्तःकरण में विराजमान हैं।

(३)

जो लोग जान-बूझ कर अथवा अनजान में धर्म की ओट में अपूरण मित्या-धर्म का प्रचार करते हैं, वे इस बात को समझ लें कि ये सारे धार्मिक सिद्धान्त, (नियम) प्रतिज्ञाएँ तथा विधि नियम, जिनका वे समर्थन करते हैं और जिनका शिक्षा देते हैं, अत्यधिक हानिकारक हैं, क्योंकि

अपनी शहद की भविष्यों की देख रेख करत हँ, और इसी के साथ साथ (अपनी योग्यता के अनुसार) गाववालों को दया दारु की सहायता करत हँ, उनके बच्चों को पढ़ाते हँ और अपने पड़ोसियों के लिए चिट्ठियाँ और अर्जियाँ इत्यादि लिखत हँ ।

लोग यह समझेंगे कि इससे अच्छा और कोई जीवन हो ही नहीं सकता । पर तो भी यह जीवन नरक ही होगा अथवा नरक ही ही जायगा, यदि ये लोग पाखण्डी और मिथ्या भाषी नहीं हैं अर्थात् यदि उनमें वास्तव में सगई है ।

यदि इन लोगों ने उन सुविधाओं और पेश व थाराम की बातों को, जो उन्हें रुपये जैसे का अदीलत आर शहरों में प्राप्त थीं, छोड़ा है, तो ऐसा उन्होंने सिर्फ इमलिण किया है कि वे सब आदमियों को भाइ परमपिता परमेश्वर के सामने एक समान मानते हैं । समानता के मानी योग्यता और कीमत में समानता नहीं परन्तु इस बात में कि सबको जीने का और जीवन के लिए आवश्यक चीजों के पाने का समान हक है ।

मनुष्यों की समानता के सम्बन्ध में लोगों को उस समय संदेह हो सकता है, जब वे नवयुवकों के ऊपर विचार करत हैं जिनकी पहले की (भूत कालिक) अस्थिति भिन्न भिन्न रही है, परन्तु जित्त समय मनुष्य छोटे छोट बच्चों के ऊपर विचार करत है, तो इस संदेह के लिए कहीं कोई स्थान नहीं रह जाता । क्या कारण है कि किसी एक बालक की शारीरिक तथा मानसिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान रखा जाय, उसकी बड़ी हिजाजत और होशियारी के साथ परवरिश की जाय, और उसे हर तरह की सहायता पहुँचाई जाय, और साथ ही इसके दूसरे बालक को, जो वैसा ही सुन्दर, वैसा ही चयवा उमसे अधिक होनहार है, उचित लालन पालन न होने के कारण क्षीण काय, और नियत होने दिया जाय । उसे काफी दूध भी न मिले, जिसमें उसके अंग प्रथम एवं शरीर का समुचित विकास हो सके । वह मूर्ख और

एक अस्वास्थ्य तथा मिथ्या बातों में विश्वास करने वाला और एक भार-चाहक पशु बना रहे। और फिर यह कहा जाय कि इसके भाग्य में ही यह लिखा है ?

इसमें सन्देह नहीं कि यदि लोगों ने शहरों का रहना छोड़ दिया है, और गाँव देहात में बस गये हैं जैसा कि इन लोगों ने किया है, तो इसका कारण केवल यही है कि वे मनुष्य के भाई-चारे (विश्व-बन्धुत्व) के रिश्ते में केवल जवानी नहीं बरन् वास्तविक विश्वास को कार्य रूप में परिणत करने का तैयार नहीं हैं, तो कम-से-कम अपने जीवन में वे अवश्य उसे कार्य रूप में देखना चाहते हैं, और उम्का उठाने श्रीगणेश भी कर दिया है। और यदि उनमें सच्चाई है, यदि वे जैसा कहते हैं वैसा ही करना चाहते हैं, तो उनके इस विचार पर अमल करने के प्रयत्न का फल यह अवश्य होगा कि वे एक बहुत बड़ी विषम स्थिति में पड़ जायेंगे।

त्रापद से, आराम से और विशेष कर सफाई के माध्यम रहन की अपनी आदतों के साथ (जो बचपन से पढ़ रही है) गाँवों में पहुँचने पर उठाने अपने रहन के लिए एक छोटा-सा झोंपड़ा मोल अथवा किराये पर लेकर उसकी खूब अच्छी तरह सफाई की है, उसमें सुइयों से चमड़ा हुआ और कीचड़ों को साफ किया है, अथवा अपने ही हाथों से एक झोंपड़ा तैयार कर लिया है, और उसमें विलासिता नहीं बरन् आवश्यकता की कुछ एक चीजें—जैसे लोहे का पलंग, अलमारी तथा लिखन के लिए मेज इत्यादि रखकर उसे खूब सजाया है। इस प्रकार गाँवों में जाकर वे अपना जीवन आरम्भ करते हैं। पहले तो गाँव वाले उनसे घृणा करते हैं, यह समझते हैं कि (दूसरे अमीर आदमियों का तरह) वे भी बल-प्रयोग द्वारा अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे, और इसलिए अपनी अपनी दरवास्त और आँगों को लेकर वे उन तक नहीं पहुँचते हैं। परन्तु थोड़े ही दिनों में, धीरे धीरे लोग इन आने वालों के स्वभाव से परिचित हो जाते हैं, वे

(आगन्तुक) लोग स्वयं अपनी ओर से अपनी सेवाएँ उन ग्राम्यानों की भेंट करने लगते हैं, तथा साहसी और निर्भीक ग्राम यासी थोड़े ही समय में यह मालूम कर लेते हैं कि ये नवागन्तुक सिमी बात से इन्कार नहीं करते, बल्कि लोगों को उनसे लाभ पटुच सकता है।

इसके बाद उनके सामने हर प्रकार का मार्ग पेश होन लगती हैं। वे धीरे धीरे बढ़ती भी रहती हैं। गांव वालों का मार्गों की पूर्ति करते-करते वे भी उन्हीं की तरह हो जाते हैं।

मिथा रूप में मागते मागत, जैसा कि स्वाभाविक है, लोग उनसे यत्न अधिकार के अपनी मार्गें पेश करा लगते हैं। लोग चाहते हैं कि नवागन्तुका के पास दूसरों से जितना अधिक धन है उसे वे उन लोगों में बांट दें। ये नये धने हुए महाभुभार भी सोचते हैं कि जो लोग अत्यंत दीन और दुखी हैं उनको वे अपने पाम की फालतू चीजें, नकी उन्हें कोई विशेष आवश्यकता नहीं है बांट दें। परन्तु वे भी सतोप नहीं होता। वे तो यह चाहते हैं कि उनके पाम भी सिर्फ इतनी ही चीजें बाकी रहें जितनी प्रथम मनुष्य (अर्थात् सामान्य मनुष्य) के पाम होनी चाहिए। पर होता यह है कि एक सामान्य मनुष्य की जरूरतों का एक निश्चित नाप न हान के कारण लाग की कोई सीमा नहीं रह जाता। क्योंकि हमेशा चारों ओर गरीबों की घोर-घोर पुकार मची ही रहती है, और जब इन अतिशय दरिद्र लोगों की दशा से वे अपनी तुलना करते हैं तो वे अपने पास इनकी अपेक्षा अधिक धन देखते हैं।

यह आवश्यक जान पड़ता है कि हर एक आदमी को एक-एक गिलाम दूध मिला करे; परन्तु इन दोनों के दो छोटे छोटे टुकड़े बरचे हैं, जिनकी मां के स्तनों में दूध नहीं है और एक दो माल का बरचा है जो मारे मूत्र के मूल प्राय हो रहा है। वे एक गदा, तकिया और कम्बल भी रख सकते हैं, जिसमें दिन भर के परिश्रम से थक जान पर रात को आराम से सो सकें। परन्तु उनके सामने एक कोट के ऊपर,